॥ श्रीः ॥

पूर्वमध्यमा द्वितीय-खण्ड

सफलता-सोपान

(अनिवार्य विषय : हिन्दी)

(तृतीय प्रश्न-पत्र)

निबन्धायन • कथा-प्रवाह

सुन्दरकाण्ड (सर्ग ४ से ६)

व्याकरण और मुहावरे • हिन्दी निबन्ध

नवीन पाठ्यक्रमानुसार लघु एवं अतिलघु प्रश्नोत्तर सहित

लेखक

डा. त्रिभुवन मिश्र

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

वाराणसी

परीक्षापयोगी प्रश्नोत्तरात्मक पुस्तकें

(संस्कृत भाषा में)

अभिधावृत्तिमातृका-सोपानम् । डॉ. शिवप्रसाद द्विवेदी
अलङ्कारशास्त्रस्येतिहासः । परमेश्वरदीन पाण्डेय
उत्तररामचरितादर्श । डॉ. रमाशंकर मिश्र
कर्पूरमंजरी-दीपिका । गौरीनाथ मिश्र 'भास्कर'
कादम्बरी-कला-प्रकाशः । डॉ. नरेश झा
कादम्बरी-सोपानम् । शिवप्रसाद द्विवेदी
काव्यप्रकाश-रहस्यम् । श्रीरामजीलाल शर्मा
काव्यमीमांसा-दीपिका । वेदव्यास शुक्ल (१-५ अध्याय)
काव्यशास्त्रस्येतिहास-सोपानम् । डॉ. शिवप्रसाद द्विवेदी
काव्यालङ्कारसूत्रवृत्तेः-आलोकः । (तृतीयाधिकरण प्रश्नोत्तरी) । डॉ. नरेश झा
किरातार्जुनीय-रहस्यम् । डॉ. कृष्णदेव प्रसाद । १-२ सर्ग, ३-६ सर्ग
कुमारसम्भवम्-रहस्यम् । श्री रामप्रसाद त्रिपाठी । १-२ सर्ग
कुवलयानन्दालोकः । डॉ. नरेश झा
चन्द्रकलानाटिका-रहस्यम् । परमेश्वरदीन पाण्डेय
चन्द्रालोक-रहस्यम् । मानवल्ली तथा बेताल
चम्पूरामायण सोपानम् । डॉ शिवप्रसाद द्विवेदी
तर्कभाषा-सोपानम् । डॉ. शिवप्रसाद द्विवेदी
तर्कसंग्रह-रहस्यम् । श्रीकीर्त्यानन्द झा
दशकुमारचरित-सोपानम् । डॉ. शिवप्रसाद द्विवेदी
ध्वन्यालोक-प्रकाशिका । श्री राजेन्द्रप्रसाद कोठ्यारी
नलचम्पू-रहस्यम् । पं. परमेश्वरदीन पाण्डेय
नाट्यशास्त्र-प्रश्नोत्तरी । १-७ अध्याय; १७-२० अध्याय
नैषधीयचरित-प्रश्नोत्तरी । मिश्र एवं द्विवेदी । १-५ सर्ग; १०-१३ सर्ग
परमलघुमञ्जूषा-सोपानम् । डॉ. शिवप्रसाद द्विवेदी
परिभाषेन्दुशेखर-सोपानम् । डॉ. शिवप्रसाद द्विवेदी
पाणिनीयशिक्षा-सोपानम् । डॉ. बालगोविन्द झा
प्रतिमानाटक-रहस्यम् । डॉ. रमाशंकर त्रिपाठी
प्रबन्धसङ्ग्रहः (व्याकरणाचार्य निबन्ध) । डॉ. ब्रह्मानन्द त्रिपाठी
भट्टिकाव्य-दर्पणः । स्वामी प्रज्ञान भिक्षु । १-४ सर्ग, ५-८ सर्ग
भट्टिकाव्यालोकः । डॉ. रमाशङ्कर मिश्र । १४-१७ सर्ग, १८-२२ सर्ग
भारतीयसंस्कृति-सोपानम् । आचार्य शिवप्रसाद द्विवेदी
मध्यसिद्धान्तकौमुदी-चन्द्रिका । आचार्य विजयमित्रशास्त्री (१-४ खण्ड) सम्पूर्ण

॥ श्रीः ॥

पूर्वमध्यमा द्वितीय-खण्ड

सफलता-सोपान

(अनिवार्य विषय : हिन्दी)

(तृतीय प्रश्न-पत्र)

निबन्धायन ● कथा-प्रवाह

सुन्दरकाण्ड (सर्ग ४ से ६)

व्याकरण और मुहावरे ● हिन्दी निबन्ध

नवीन पाठ्यक्रमानुसार लघु एवं अतिलघु प्रश्नोत्तर सहित

लेखक

डा. त्रिभुवन मिश्र

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

वाराणसी

प्रकाशक
चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)
के. 37/117 गोपालमन्दिर लेन
पो. बा. नं. 1129, वाराणसी 221001
दूरभाष : 2335263

© सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन
नवीन संस्करण
मूल्य : 60.00

अन्य प्राप्तिस्थान
चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस
4697/2, भू-तल (ग्राउण्ड फ्लोर)
गली नं. 21-ए, अंसारी रोड
दरियागंज, नई दिल्ली 110002
दूरभाष : 32996391
ई-मेल : chaukhambapublishinghouse@gmil.com

❖

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान
38 यू. ए. बंगलो रोड, जवाहर नगर
पो. बा. नं. 2113
दिल्ली 110007
दूरभाष : 23856391

❖

चौखम्बा विद्याभवन
चौक (बैंक ऑफ बड़ोदा भवन के पीछे)
पो. बा. नं. 1069, वाराणसी 221001
दूरभाष : 2420404

विषयानुक्रमणिका

निबन्धायन

(१) जबान

(१) प्रश्न—अपनी पाठ्य-पुस्तक निबन्धायन के 'जबान' शीर्षक निबन्ध के लेखक का संक्षिप्त जीवन-परिचय देते हुए पाठ का सारांश प्रस्तुत कीजिए । १

(२) प्रश्न—निम्नलिखित गद्यांशों की ससन्दर्भ व्याख्या प्रस्तुत कीजिए । ३

(क) कहने को···प्रयोजन नहीं है । ४

(ख) ईश्वर न करे क्या कहना । ४

(ग) केवल स्वाद···कर सकती है । ४

(घ) अब धर्म के सम्बन्ध में····सजावार बनायेगा । ५

(ङ) जीभ को दवाना कुछ समझ में नहीं आता ५

(२) सच्ची वीरता

(३) प्रश्न—अपनी पाठ्य-पुस्तक निबन्धायन के आधार पर 'सच्ची वीरता' शीर्षक निबन्ध के लेखक सरदार पूर्णसिंह का संक्षिप्त जीवन-परिचय देते हुए पाठ का सारांश लिखिए । ५

(४) प्रश्न—निम्नलिखित गद्यखण्डों की ससन्दर्भ व्याख्या प्रस्तुत कीजिए । ९

(क) सच्चे वीर···परोपकारी होते हैं । ९

(ख) सत्त्वगुण के समुद्र में···साधु पुरुष हैं । १०

(ग) ऐसे दैवी वीर रुपया····बड़ा बना देते हैं । १०

(घ) वह वीर क्या···जैसा का तैसा ही रहेगा । १०

(ङ) जय वहीं होती है···की तरह बढ़ो । ११

(च) जब हम कभी···वक्त जाया न हो । ११

(३) क्रोध

(५) प्रश्न—अपनी पाठ्य-पुस्तक के आधार पर 'क्रोध' शीर्षक निबन्ध के लेखक का संक्षिप्त जीवन-परिचय देते हुए पाठ का सारांश लिखिए । ११
(६) प्रश्न—निम्नलिखित गद्यखण्डों की ससन्दर्भ व्याख्या प्रस्तुत कीजिए । १४
(क) क्रोध इतना बुरा···बिगड़ उठता है । १४
(ख) क्रोध न तो····सत्पुरुषों को नहीं । १५
(ग) जिनको ईश्वर ने···अधिक हानि भी होती है । १५
(घ) क्रोध से बचने···काम करना सहज है । १५
(ङ) क्रोध को बिलकुल···वह क्रोध बुरा नहीं । १६

(४) कुसंग और सत्संग

(७) प्रश्न—अपनी पाठ्य-पुस्तक के आधार पर 'कुसंग और सत्संग' नामक पाठ के लेखक का संक्षिप्त जीवन-परिचय देते हुए पाठ का सारांश प्रस्तुत कीजिए । १६
(८) प्रश्न—अपनी पाठ्य-पुस्तक के आधार पर अधोलिखित गद्यांशों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए । १९
(क) कुसंग का ज्वर····उठाती जायेगी । १९
(ख) बहुत से ऐसे···गम्भीर या अच्छी बात नहीं । १९
(ग) जब एक बार मनुष्य···लागि है पै लागि है । २०
(घ) अच्छा समाज यदि मिले···रुचि के अनुकूल नहीं होते । २०
(ङ) समाज में प्रवेश करने से ··क्षमा करना सीखते हैं । २१
(च) समाज एक परेड है···भले मानसों के लक्षण हैं । २१
(छ) युवा पुरुषों को···कुछ भी अनुभव नहीं रह जाता । २१

(५) कर्तव्य और सत्यता

(९) प्रश्न—अपनी पाठ्य-पुस्तक के आधार पर 'कर्तव्य और सत्यता' शीर्षक निबन्ध के लेखक का संक्षिप्त जीवन-परिचय देते हुए पाठ का सारांश लिखिए । २२
(१०) प्रश्न—अधोलिखित गद्यांशों की सन्दर्भ सहित व्याख्या प्रस्तुत कीजिए । २३

(क) कर्तव्य वह वस्तु…कर्तव्यों को देखते हैं। २४
(ख) हम सब लोगों के मन में…डर और पछतावा नहीं होता। २४
(ग) धर्मपालन करने के मार्ग में…भय न रहेगा। २५
(घ) इस संसार में जितने…आदर के साथ लिया जाता है। २५
(ङ) कर्तव्य-पालन और सत्यता में…नहीं चल सकता। २५
(च) संसार में जितने पाप हैं…झूठ बोलें। २६
(छ) संसार में बहुत से ऐसे नीच…कुत्सित कर्म है। २६
(ज) इसीलिए हम सब लोगों का…सुखी बने रहेंगे। २६

(६) शिक्षा का उद्देश्य

(११) प्रश्न—अपनी पाठ्य-पुस्तक निबन्धायन के आधार पर 'शिक्षा का उद्देश्य' नामक निबन्ध के लेखक का संक्षिप्त परिचय देते हुए पाठ का सारांश प्रस्तुत कीजिए। २७
(१२) प्रश्न—अधोलिखित गद्यांशों की अपनी पाठ्य-पुस्तक के आधार पर ससन्दर्भ व्याख्या प्रस्तुत कीजिए। ३०
(क) अध्यापक और समाज…उद्देश्य है। ३०
(ख) जो समाज अपने वैयक्तिक…कठिन हो जायेगा। ३०
(ग) आत्मा अजर और अमर…परिणाम दुःख होता है। ३१
(घ) आत्मसाक्षात्कार का साधन…वातावरण उत्पन्न किया जाय। ३१
(ङ) एकाग्रता ही आत्मसाक्षात्कार…नष्ट करता है। ३१
(च) चित्त की क्षुद्र वासनाओं से…प्रेम निष्काम होता है। ३२
(छ) धर्म उन सब कामों की समष्टि…वह पहुँच जाय। ३२
(ज) साधारणतः शिक्षक योगी…अधिकारी बन सकेगा। ३२

(७) गिल्लू

(१३) प्रश्न—पाठ्य-पुस्तक निबन्धायन के आधार पर 'गिल्लू' शीर्षक निबन्ध के लेखक का संक्षिप्त परिचय देते हुए पाठ का सारांश लिखिए। ३३
(१४) प्रश्न—अपनी पाठ्य-पुस्तक के आधार पर अधोलिखित गद्यांशों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए। ३५
(क) सोनजुही में आज…लघुप्राणी की खोज है। ३६
(ख) हमारे बेचारे पुरखे…प्रयुक्त करते हैं। ३६

(ग) गिल्लू इनमें अपवाद…नीचे फेंक देता था। ३६
(घ) उसी बीच मोटर दुर्घटना…कम खाता रहा। ३७
(ङ) गिलहरियों के जीवन की अवधि…स्थिति में पकड़ा था। ३७

(८) जमुना के तीरे-तीरे

(१५) प्रश्न—अपनी पाठ्य पुस्तक निबन्धायन के आधर पर डॉ० विद्यानिवास मिश्र का संक्षिप्त परिचय देते हुए उनके निबन्ध 'जमुना के तीरे-तीरे' का पाठ्य-सारांश प्रस्तुत कीजिए। ३८
(१६) प्रश्न—अधोलिखित गद्यांशों की अपनी पाठ्य-पुस्तक के आधार पर ससन्दर्भ व्याख्या प्रस्तुत कीजिए। ४०
(क) जाने कब से…हाथ नहीं लगा है। ४१
(ख़) मैं आज युगों के बाद भी…उलझा पड़ा रहता है। ४१
(ग) यह भी लोग कहते हैं कि…विलुप्त हो गयी है। ४२
(घ) सुना है यमुना और यमराज… हहकार जरूर सुनी है। ४२
(ङ) सुनता हूँ, उस धारा में एक वार…आवश्यकता नहीं रह जाती। ४३

(९) बादलों की छाँव तले

(१७) प्रश्न—पाठ्य-पुस्तक निबन्धायन के आधार पर 'बादलों की छाँव तले' निबन्ध के लेखक डॉ० श्रीप्रसाद का संक्षिप्त परिचय देते हुए पाठ-सारांश प्रस्तुत कीजिए। ४३
(१८) प्रश्न—अधोलिखित गद्यांशों की अपनी पाठ्य-पुस्तक के आधार पर ससन्दर्भ व्याख्या प्रस्तुत कीजिए। ४५
(क) मानव और प्रकृति…प्रकट करेगा। ४६
(ख) सम्पूर्ण सृष्टि के दो ही…निछावर कर देती है। ४६
(ग) हमें निराशा के बजाय…आह्लादित करते हैं। ४७
(घ) ऐसे महिमामयी…सबसे बड़ा है। ४७

कथा-प्रवाह

(१) परीक्षा ४८
(२) मुगलों ने सल्तनत बख्श दी ५०
(३) देशभक्त ५२

(४) मिठाईवाला ५४
(५) पढ़ाई ५५
(६) चार आने ५८
(७) सती ६०
(८) ठेस ६१
(९) रस-बूंद ६३
(१०) अँधेरा ६५

सुन्दरकाण्ड : सर्ग ४ से ६ तक

संस्कृत से हिन्दी में अनुवाद ६७–७४

हिन्दी-व्याकरण

प्रश्न—व्याकरण की परिभाषा देते हुए शब्दों का वर्गीकरण एवं उनका लक्षण व भेदोपभेद का वर्णन कीजिए। ७५..८३

मुहावरा

अर्थ एवं वाक्यों में प्रयोग ८४-९१

निबन्ध

(१) प्रिय कवि : गोस्वामी तुलसीदास ९२
(२) महापुरुष राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ९५
(३) विज्ञान और मानव-जीवन (अथवा) विज्ञान के चमत्कार (अथवा) विज्ञान की भूमिका (अथवा) वैज्ञानिक आविष्कारों की उपयोगिता ९८
(४) गंगा-प्रदूषण १०२
(५) बेकारी और शिक्षा १०४
(६) देश-प्रेम १०६
(७) नारीमुक्ति आन्दोलन १०९
(८) विद्यार्थी और राजनीति (अथवा) राष्ट्रीय चेतना और युगादर्श (अथवा) विद्यार्थी और अनुशासन १११
(९) परहित सरिस धर्म नहिं भाई। परपीड़ा सम नहिं अधमाई॥ (अथवा) परोपकार ११४
(१०) बाढ़ का आँखों देखा वर्णन ११६

॥ श्रीः ॥

सफलता सोपान

(पूर्वमध्यमा : द्वितीय वर्ष)

निबन्धायन

(जीवन-परिचय, पाठ-सारांश एवं ससन्दर्भ व्याख्या)

(१) जबान

(१) **प्रश्न**—अपनी पाठ्य-पुस्तक निबन्धायन के 'जबान' शीर्षक निबन्ध के लेखक का संक्षिप्त जीवन-परिचय देते हुए पाठ का सारांश प्रस्तुत कीजिए।

उत्तर—'जबान'—प्रस्तुत पाठ 'जबान' पं० बालकृष्ण भट्ट द्वारा लिखित है। भट्टजी का जन्म प्रयाग (इलाहाबाद) के अहियापुर (मालवीय नगर) मुहल्ले में आषाढ़ कृष्ण २, रविवार संवत् १९०१ अर्थात् ३ जून सन् १८४४ को हुआ था। इनके पिता का नाम वेणीप्रसाद तथा माता का नाम पार्वती देवी था। भट्टजी की शिक्षा इनके नाना अनन्तराम मिश्र की देख-रेख में सम्पन्न हुयी थी। प्रयाग के मिशन स्कूल में १०वीं कक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् इन्होंने संस्कृत का अध्ययन करना प्रारम्भ कर दिया।

इन्होंने शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् मिशन स्कूल, सी. ए. वी. इण्टर कालेज (शिवराखन पाठशाला), कायस्थ पाठशाला आदि में कुछ दिनों तक अध्यापन कार्य करने के पश्चात् नौकरी छोड़कर पत्रकारिता में पदार्पण किया और अनेक कठिनाईयों को झेलते हुए ३३ वर्षों तक 'हिन्दी-प्रदीप' नामक पत्रिका का सम्पादन किया। यह पत्र हिन्दीवर्द्धिनी सभा की ओर से प्रकाशित होता था। कालाकाँकर से निकलने वाले साप्ताहिक पत्र 'सम्राट्' का भी कुछ दिनों तक सम्पादन किया। इनके जीवन के अन्तिम क्षण आर्थिक कठिनाइयों में बीते। २० जुलाई सन् १९१४ ईसवीय को इनका स्वर्गवास हो गया।

भट्टजी सफल पत्रकार, निबन्धकार, ज्योतिषी, वैयाकरण और अध्यापक थे। क्रोध व सरलता का सम्मिश्रण इनके स्वभाव को खरा और निर्भीक बनाता था। निर्धनता की चरम सीमा पर पहुँचने पर भी इन्हें पैसे की तनिक चिन्ता न थी। ये हिन्दीभक्त के साथ सच्चे देशभक्त भी थे।

रचनाएँ—निबन्ध-संग्रह, साहित्य-सुमन तथा भट्ट-निबन्धावली। इसके अतिरिक्त इनके लिखे नाटक भी मिलते हैं। उपन्यासकार और पत्रकार के रूप में भी इनकी ख्याति है।

भाषा-शैली—भट्टजी की निबन्ध शैली परिमार्जित व्यक्तित्व-प्रधान है। सरलता और स्वच्छन्दता इनकी मौलिक विशेषता है। इनके निबन्ध सामाजिक, साहित्यिक एवं कल्पना-प्रधान होने के साथ ही कौतूहलवर्धक भी हैं। भाषा, विषय और विचार का ताल-मेल अद्वितीय है। संस्कृत के तत्सम, तद्भव शब्दों के साथ उर्दू, अरबी व अंग्रेजी के शब्दों को इस प्रकार सँजोया है कि भावाभिव्यक्ति कहीं भी अटपटी नहीं लगती। इन्होंने वर्णनात्मक, विचारात्मक, भावात्मक तथा व्यंग्यात्मक शैलियों का सुष्ठु प्रयोग किया है।

पाठ-सारांश—पण्डित बालकृष्ण भट्ट ने अपने निबन्ध 'जबान' (जिह्वा) में मानवजीवन में जिह्वा (जीभ) की उपयोगिता, गुण एवं दोष तथा दोषों से बचने के उपायों की चर्चा की है। जिह्वा मानव-शरीर में सबसे महत्त्वपूर्ण अङ्ग है। इसका प्रभाव जीवन पर सभी इन्द्रियों से अधिक है। मानव शरीर पाँच कर्मेन्द्रियों और पाँच ज्ञानेन्द्रियों से बना है। आँख, कान, नाक, जिह्वा और त्वचा को ज्ञानेन्द्रिय माना गया है। जिह्वा कहने को तो रसमात्र का ग्राहक है पर इसका प्रभाव अन्य इन्द्रियों के कार्य पर भी पड़ता है। रस के साथ जिह्वा शब्द, गन्ध, रूप व स्पर्श को भी अपने में समेट लेती है। दूसरे शब्दों में जिह्वा दूसरी इन्द्रियों से अपनी सेवा करवाती है। भोजन में जरा भी दुर्गन्ध रहने पर जिह्वा कभी उसे स्वीकार नहीं करती। नेत्र से सुन्दर, स्वादिष्ट एवं स्वच्छ भोजन देखे जाने पर ही जिह्वा से उसे ग्रहण करने को पानी टपकता है। स्पर्शसुख का सूक्ष्म अनुभव जीभ से अच्छा और कोई अवयव नहीं कर सकता। इसीलिए जीभ का नाम रसना है।

पर जीभ का चटोरापन (अत्यधिक रसग्राही) होना अच्छा नहीं है। चटोरी जीभ अमीर को भी सारा धन चाट कर दरिद्र बना देती है। इसलिए

जीभ को वश में रखना चाहिए। जिह्वा को वश में कर लेने पर सारी इन्द्रियाँ अपने आप वश में हो जाती हैं। कहा भी गया है—

'तावज्जितेन्द्रियो न स्याद्विजितेन्द्रियकः पुमान् ।
न जयेद्रसनं यावत् जितं सर्वं जिते रसे' ।।

जीभ का काम केवल रसास्वादन ही नहीं, यह बातचीत का माध्यम भी है। इसे जबान भी कहते हैं। इसके द्वारा बड़े से बड़ा लाभ या हानि पलक झपकते हो सकती है। अतः इस पर नियन्त्रण कर सदा मीठी जबान का प्रयोग करना चाहिए। यथा—

कागा का को धन हरै, कोयल किसको देय ।
मीठे वचन सुनाय के वश अपने कर लेय ।।

इसके विपरीत कटुभाषी या बदजबान के पास लोग जाने में भी हिचकते हैं। जबान प्राचीन काल में, जब पुस्तकें नहीं थीं, पठन-पाठन का भी माध्यम थी। जीभ (जबान) से ही क्रोध उत्पन्न एवं प्रगट भी होता है। क्रोध पर नियन्त्रण पाने का सहज उपाय है धीमा एवं मधुर सम्भाषण। जिह्वा पर बिना नियन्त्रण के धर्म का पालन भी कठिन है। केवल झूठ न बोलना, झूठी गवाही न देना या चुगली आदि न करना ही जबान पर लगाम लगाना नहीं है, अपितु गप्पी न होना या अधिक वाचाल न होना भी इसी में सम्मिलित है। गप्पी या बकवादी लोग अपनी झोंक में ऐसी बातें भी कह जाते हैं जिसके लिए बाद में उन्हें पछताना पड़ता है। जबान पर नियन्त्रण न होने के कारण ही महाभारत जैसा विनाशकारी संग्राम हुआ था।

विद्यावृद्ध, वयोवृद्ध एवं अपने से अधिक अनुभवी लोगों के समक्ष आवश्यकता से अधिक बोलना बुरा है। इसे छोटा मुँह बड़ी बात कहते हैं। बहुत बकवादी होना या बात करते समय हँसते रहना, सरफन तकिया का प्रयोग आदि से बचना चाहिए। कुछ व्रजभाषी तो अपनी बातों से बना-बनाया काम स्वयं बिगाड़ लेते हैं। मालूम होता है कि ये कटुभाषी नरक से आते हैं और मर कर फिर वहीं नरक में ही जायेंगे। इसके विपरीत मधुरभाषी लोग स्वर्ग से आते हैं और ये महापुरुष मृत्यु के बाद स्वर्गगामी होंगे। ऐसे लोगों का जीवन धन्य है।

(२) प्रश्न—निम्नलिखित गद्यांशों की ससन्दर्भ व्याख्या प्रस्तुत कीजिए।

(क) कहने को……प्रयोजन नहीं है ।
(ख) ईश्वर न करे……क्या कहना है ।
(ग) केवल स्वाद……कर सकती है ।
(घ) अब धर्म……सजावार बनायेगा ।
(ङ) जीभ को दबाना……कुछ समझ में नहीं आता ।

उत्तर—(क) कहने को तो……प्रयोजन नहीं है ।

सन्दर्भ—प्रस्तुत गद्य-खण्ड पाठ्य-पुस्तक निबन्धायन के 'जबान' शीर्षक पाठ से उद्धृत है । इस निबन्ध के लेखक पं० बालकृष्ण भट्टजी हैं । इसमें इन्द्रियों के विभिन्न कार्यों का विवेचन किया गया है ।

व्याख्या—मानव शरीर की पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ अपने-अपने विषय से ही प्रबल एवं प्रगाढ सम्बन्ध रखती हैं, दूसरे इन्द्रिय के विषय से उनका कोई सम्बन्ध नहीं होता । उदाहरण के लिए कर्णेन्द्रिय केवल सुनने का कार्य करती है तो आँख केवल देखने का । कान देख नहीं सकता तो नेत्र सुन नहीं सकता । ये दोनों इन्द्रियाँ स्पर्शजन्य सुख या दुःख का अनुभव भी नहीं कर सकतीं । सुगन्ध या दुर्गन्ध का ग्रहण इनसे सम्भव नहीं । त्वगिन्द्रिय भी केवल स्पर्शजन्य सुख-दुःखें का अनुभव ही कर सकती है । इसी प्रकार घ्राणेन्द्रिय सूँघकर केवल सुगन्ध या दुर्गन्ध ही ग्रहण कर सकती है । उससे सुनने, देखने, बोलने आदि का काम नहीं ले सकते ।

(ख) ईश्वर न करे……क्या कहना ।

सन्दर्भ—पूर्ववत् ।

व्याख्या—जीभ का अधिक चटोरा होना अच्छा नहीं । ईश्वर न करे कि किसी की जीभ रसास्वादन में तेज एवं चोखी हो जाय । जीभ के गुलाम अपना सारा धन खाने-पीने में गँवा कर भी सन्तुष्ट नहीं होते । जीभ के चटोरेपन ने लाखों लोगों का घर बर्बाद कर दिया है । जुआ, शराब, ऐयाशी एवं चटोरापन—इन चारों बुराइयों में से एक भी आदमी को बर्बाद करने के लिए काफी है । जिसके अन्दर ये चारों बुराइयाँ हों उसकी बर्बादी के विषय में तो क्या कहना ? उसे बर्बाद होने से कोई नहीं बचा सकता ।

(ग) केवल स्वाद……कर सकती है ।

सन्दर्भ—पूर्ववत् ।

व्याख्या—जीभ स्वाद ग्रहण करने के अतिरिक्त शरीर के अन्य अंगों की

अपेक्षा गुण एवं दोष में अधिक प्रबल है। बड़े से बड़ा फायदा और नुकसान, दोनों ही इसके द्वारा सम्भव है। अपनी गाँठ का एक पैसा भी खर्च किये बिना मीठी जबान से लाखों का लाभ आराम से किया जा सकता है।

(घ) अब धर्म के सम्बन्ध में''''''सजावार बनायेगा।

सन्दर्भ—पूर्ववत्।

व्याख्या—जीभ पर नियन्त्रण किये बिना कोई धर्मधुरन्धर बनने का दावा नहीं कर सकता। जो व्यक्ति अपनी जिह्वा पर नियन्त्रण रखे बिना अपने को धर्मिष्ठ मानता है, वह स्वयं को धोखे में रखे हुए है। झूठ बोलना, झूठी गवाही देना या चुगली, बदगोई इत्यादि से बचे रहना ही जिह्वा-नियन्त्रण नहीं है। झूठ बोलना, झूठी गवाही देना, चुगली या जान-बूझकर किसी को बहकाना भारतीय अपराध कानून के अन्तर्गत सरकार द्वारा दण्डनीय अपराध हैं। सब कुछ जानते हुए भी बुद्धि भ्रष्ट होगी, वही इस प्रकार के अपराध करके अपने को कानूनन सजावार बनायेगा।

(ङ) जीभ को दबाना''''''कुछ समझ में नहीं आता।

सन्दर्भ—पूर्ववत्।

व्याख्या—लेखक का कहना है कि जीभ पर नियन्त्रण रखने का तात्पर्य यह नहीं कि हम सदा चुप ही रहें। किन्तु समयानुसार चुप रहना ही उचित होता है। जैसे विद्यावृद्ध, वयोवृद्ध और अपने से अधिक अनुभवी लोगों के सम्मुख। जिससे कोई यह न कह सके कि छोटे मुँह बड़ी बात कह रहा है। इसी तरह बहुत बढ़-चढ़ कर बकवाद करना भी अच्छा नहीं। बहुत से लोगों की आदत होती है कि वे घण्टों तक धारा-प्रवाह बोलते ही जाते हैं, पर उनकी बात का खास मतलब सुनने वाले की समझ में कुछ नहीं आता। सुनने वाला यह समझ ही नहीं पाता कि इनके कहने का मतलब या मुख्य विषय क्या है।

(२) सच्ची वीरता

(३) प्रश्न—अपनी पाठ्य-पुस्तक निबन्धायन के आधार पर 'सच्ची वीरता' शीर्षक निबन्ध के लेखक सरदार पूर्णसिंह का संक्षिप्त जीवन-परिचय देते हुए पाठ का सारांश लिखिए।

उत्तर—सरदार पूर्णसिंह : जीवन-परिचय—गागर में सागर भरने के लिए प्रसिद्ध अध्यापक सरदार पूर्णसिंहजी का जन्म सीमा प्रान्त पंजाब के

ऐबटाबाद जिले के सलहद (सलहड्डा) नामक ग्राम में संवत् १९३७ (सन् १८७१ ईसवीय) में हुआ था। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा रावलपिण्डी तथा लाहौर में हुयी। रसायनशास्त्र की विशेष शिक्षा प्राप्त करने के लिए राजकीय छात्रवृत्ति पर जापान गये, जहाँ इनकी मुलाकात अनेक कवियों एवं कलाकारों से हुयी। स्वामी रामतीर्थ से प्रभावित होकर इन्होंने संन्यास ग्रहण कर लिया। किन्तु स्वदेश व्रापस आने पर माँ के आग्रह से इन्होंने संन्यास त्याग कर गृहस्थ जीवन अपनाया और अध्यापन तथा देहरादून के इम्पीरियल फारेस्ट रिसर्च इन्स्टीट्यूट तथा ग्वालियर राज्य के प्रधान रसायनिक आदि पदों पर काम करने के पश्चात् ज़ाड़ाँवाला लौट कर खेती करने लगे। यहीं पर सिक्ख धर्म ग्रहण किया। इनकी मृत्यु संवत् १९८८ वि० में हुई।

सरदार पूर्णसिंह ने केवल छः निबन्ध लिखे हैं—१. कन्यादान या नयनों की गंगा, २. पवित्रता, ३. आचरण की सभ्यता, ४. मजदूरी और प्रेम, ५. सच्ची वीरता और ६. अमरीका का मस्त जोगी वाल्टह्विटमैन। इन छः निबन्धों के कारण ही इनको निबन्धकारों की पंक्ति में श्रेष्ठ स्थान प्राप्त है। इन्हें पंजाबी के अतिरिक्त हिन्दी और अंग्रेजी का भी अच्छा ज्ञान था। भावुक स्वभाव के कारण इन्होंने पंजाबी भाषा में कविताएँ भी लिखी हैं। इनकी भाषा विषयानुकूल साधारण और अलंकारयुक्त है। इनकी शैली वर्णनात्मक एवं विचारात्मक, दोनों ही प्रकार की है। व्यंग्य का पुट, कथन की वक्रता तथा चित्रोपमता इनकी शैली की मुख्य विशेषताएँ हैं। भावों तथा भाषा का आकर्षक ताल-मेल इनके जैसा अन्यत्र दुर्लभ है। भाषा के शिल्पकार के रूप में ख्यातिलब्ध सरदार पूर्णसिंह ने संस्कृत शब्दों के बाहुल्य के साथ उर्दू के व्यावहारिक शब्दों को भी उचित सम्मान दिया है। विरोधी अर्थ प्रगट करने वाले शब्दों के प्रयोग के कारण इनकी भाषा में विशेष आकर्षण है।

सच्ची वीरता (पाठ-सारांश)—सरदार पूर्णसिंह द्वारा लिखित निबन्ध 'सच्ची वीरता' मानवीय गुणों का भावात्मक चित्रण है। अध्यापक होने के कारण विषय को उदाहरणों द्वारा समझाने का भरपूर प्रयास किया है। इन्होंने वीरता के वास्तविक स्वरूप को अपने ढंग से व्यक्त किया है। सच्चे और धैर्यशाली वीर गम्भीर एवं आजाद प्रकृति के होते हैं। उनके मन की गम्भीरता एवं शान्ति आकाश की तरह स्थिर और अचल होती है। वे सच्चे परोपकारी होते हैं। सत्त्वगुणसम्पन्न वे वीर अपना क्षुद्र जीवन परोपकार में त्याग कर

ईश्वरीय जीवन पा जाते हैं। दूसरों की कमायी दौलत एवं शक्ति के बलबूते पर शासन करने वाले क्षुद्र राजाओं की अपेक्षा सच्चे त्यागी वीर ही हमारे सच्चे राजा हैं, क्योंकि उनका शासन लोगों के शरीर पर न होकर दिल पर होता है। दुनिया के राजाओं के वल की दौड़ लोगों के शरीर तक ही सीमित है। हाँ, जब कभी किसी अकबर बादशाह का राज लोगों के दिल पर होता दीख पड़े तो समझना चाहिए कि कायरों की बस्ती में कोई एक सच्चा वीर उत्पन्न हो गया है।

सरदार पूर्णसिंह ने सच्चे वीर का उदाहरण एक बागी गुलाम और आततायी बादशाह के बीच हुयी बातचीत से देते हुए कहा है कि लोग केवल शरीर की रक्षा के लिए ही राजाओं से डरते हैं, नहीं तो दिल से तिरस्कार ही करते हैं। उस बागी गुलाम ने बादशाह को उसके बल की हद दिखलाने द्वारा उत्तर दिया कि—'हाँ, मैं फाँसी पर चढ़ जाऊँगा पर तुम्हारा तिरस्कार तो तब भी कर सकता हूँ'। पर सच्चे राजा अपने प्रेम के जोर से लोगों के दिलों को सदा के लिये बाँध देते हैं। लोगों के दिलों पर शासन करने वाले ये बादशाह फौज, तोप, बन्दूक आदि के बिना ही शहंशाह होते हैं। सच्चा वीर अपनी आवाज को सदा बुलन्द रखता है। मंसूर नामक फौजी ने फौज में एक दिन ऐलान कर दिया कि 'मैं खुदा (ईश्वर) हूँ'। दुनिया के बादशाह ने कहा—'यह काफिर है।' लोगों ने उसे बादशाह के हुक्म से मारा-पीटा और सूली पर चढ़ा दिया। पर वह सदा अनलहक का दावा करता रहा। आज वह अपने इसी दावे के लिए मर कर भी लोगों के दिलों में अमर है। इसी प्रकार भगवान् शिव ने एक कापालिक के माँगने पर मौज में आकर अपना मस्तक ही दान कर दिया। बादशाह अकबर के दरबार में आये दो वीर पुरुष अपनी वीरता का सबूत देने के लिए भरे दरबार में एक-दूसरे पर आक्रमण कर खून से लथपथ हो गये। भगवान् बुद्ध ने भी एक मृग की जान बचाने के लिए अपने को व्याघ्र के सामने कर दिया। तात्पर्य यह कि सच्चे वीर ख्याति के लिए धन-दौलत आदि का दान नहीं करते अपितु अपने आप को ही दान कर देते हैं। ऐसे लोग वीरता दिखाने के लिए किसी बड़े मौके की तलाश न कर छोटे मौके को ही बड़ा बना देते हैं।

सच्चे वीर दृढ़ निश्चय वाले होते हैं। उनमें जब जोश आता है तो संसार में भूचाल आ जाता है। उसके सामने दुनिया की ताकत रुकावट नहीं बन

सकती। बड़े से बड़े अत्याचारी का वह मुकाबला दृढ़ता से करता है। एक बार यूरोप में पोप का प्रभाव इतना बढ़ गया था कि उसे ईश्वर का प्रतिनिधि माना जाने लगा। वह लोगों को स्वर्ग और नरक की टिकटें बेच कर धनी व व्यसनी हो गया था। रोम के एक छोटे चर्च के पादरी लूथर के पास जब उसके भेजे टिकट बेचने के लिए आये तो पहले तो उसने पत्र द्वारा इसका विरोध किया, फिर उसने सम्पूर्ण यूरोप में पोप के विरुद्ध ऐसी लहर पैदा कर दी कि पोप का सारा प्रभाव तिनके के समान उड़ गया। वीरता के जोश में रणजीत सिंह ने अपना घोड़ा अटक नदी में कुदा दिया और उनकी देखा-देखी सारी फौज कूद पड़ी तथा उत्साह में उफनती अटक को सारी कटक पार कर गयी। इसी तरह एक सिपाही के दिल में दया-वीरता ने जोश मारा और गोलियों की बौछार को 'हाल्ट' कह कर रोक दिया। सिकन्दर ने जोश में आकर आल्पस पर्वत की सत्ता को नकार दिया। एक भेड़ चराने वाली युवती के कारण सारा फ्रान्स एक भारी हार से बच गया। पर असली वीर अपने कारनामों को अपनी दिनचर्या में कभी महत्त्व नहीं देते। वीर सत्य की नींव पर खड़ा रहता है। वीरता सदा नयी और निराली होती है। इसकी नकल नहीं होती। इसका विकास नाना रूपों में नाना प्रकार से होता है।

जापानी लोग वीरता की मूर्ति का दर्शन चेरी के फूलों की शान्त मुस्कान में करते हैं, जो दिल में नया जोश भर देती है। इसमें जोश के साथ हृदय की कोमलता का भी दर्शन होता है। वीर पुरुष का दिल सबका दिल हो जाता है। उसका मन सबका मन हो जाता है। वह सबका और सब उसके अपने हो जाते हैं। वीरों को उत्पन्न करने या बनाने के लिए कोई कारखाना नहीं होता। यह संसार में कहीं भी किसी भी काल में उत्पन्न हो स्वतः पलते व बढ़ते हैं। दुनिया को उनका पता उनके कारनामों से ही चलता है। वे धरती के नीचे दबे जवाहरातों की भाँति होते हैं, जो सच्चे पारखी द्वारा ही परखे जाते हैं। वे गुदड़ी में छिपे लाल की तरह होते हैं। दुनिया की बनावट और लिखावट के मखौलों से उनका कोई सरोकार नहीं होता। वीर पुरुष मनुष्य के जीवन को जरा-सी चीज समझता है, जो एक बार के लिए ही काफी है।

वीर पुरुष के दिल में एक दैवी शक्ति का अचल केन्द्र है। वह बल को नष्ट करने के बजाय हर तरह से संचय करने व बढ़ाने की नीति पर चलता

है। वीर का स्वभाव ऐसे थर्मामीटर जैसा है जो जल्दी गर्म एवं जल्दी ठंडा नहीं होता है। निबन्ध के अन्त में सरदार पूर्णसिंह उपदेश के तौर पर लिखते हैं कि बनावटी जीवन की चञ्चलता में अपने को न खोकर वीर नहीं तो वीरों का अनुगामी अवश्य बनना चाहिए। अपनी जिन्दगी बचाने के बजाय दूसरों की रक्षा व हित में सौंप देना चाहिए। द्वेष एवं भेदपूर्ण व्यवहार त्याग कर प्रेम और आनन्द से काम लेना चाहिए। वीर सदा अपने अन्दर ही 'मार्च' करता है और अपने आपको देखता हुआ अपनी आत्मिक उन्नति साधना में रत रहता है। इस प्रकार निबन्धकार ने वीरों के प्रत्येक गुण का निरूपण करते हुए जीवन में इसे अपनाने की अपील की है।

(४) प्रश्न—निम्नलिखित गद्य-खण्डों की ससन्दर्भ व्याख्या प्रस्तुत कीजिए।

(क) सच्चे वीर······परोपकारी होते हैं।

(ख) सत्त्व गुण के······साधु पुरुष हैं।

(ग) ऐसे दैवी वीर······बड़ा बना देते हैं।

(घ) वह वीर क्या······जैसा का तैसा ही रहेगा।

(ङ) जय वहीं······की तरह बढ़ो।

(च) जब हम कभी······दिखलाने के लिए बनाना चाहते हैं।

उत्तर (क) सच्चे वीर··· ···परोपकारी होते हैं।

सन्दर्भ—प्रस्तुत गद्य-खण्ड पाठ्य-पुस्तक निबन्धायन के 'वीरता' शीर्षक पाठ से उद्धृत है। इस निबन्ध के लेखक सरदार पूर्णसिंहजी हैं। इसमें सच्चे वीर के स्वभाव का परिचय दिया गया है।

व्याख्या—लेखक का कहना है कि सच्चे वीर धैर्यशाली, गम्भीर एवं स्वतन्त्र प्रकृति के होते हैं। उनका हृदय समुद्र की तरह विशाल एवं गम्भीर तथा आकाश की तरह अचल और स्थिर होता है। वे सामान्यतया कभी चंचल नहीं होते। वाल्मीकि ने कुम्भकर्ण की गाढ़ी निद्रा में भी वीरता का चिह्न देखा है, वह बिलकुल सच है। वीरों की निद्रा सहज नहीं खुलती। वे सत्त्व गुण के क्षीरसागर में विष्णु की भाँति दुनिया की खबर से बेखबर सोये रहते हैं। ऐसे वीरों की नींद तो संसार में परोपकार एवं दुष्टों के संहार के लिए ही खुलती है। ऐसे लोग सच्चे अर्थों में परोपकारी होते हैं। लौकिक जगत् के मान-अपमान से इनका ध्यान दूर रहता है।

(ख) सत्त्व गुण के समुद्र में··· ···साधु पुरुष हैं।

सन्दर्भ—पूर्ववत् ।

व्याख्या—लेखक का कहना है कि सच्चे सन्त और वीर वही हैं जिनका अन्त:करण सत्त्वगुण के समुद्र में निमग्न हो गया है। ऐसे लोग अपना क्षुद्र जीवन परोपकार में त्याग कर ईश्वरीय जीवन (अमरत्व) प्राप्त कर लेते हैं तथा उनके लिए संसार के सभी दुरूह मार्ग सुगम हो जाया करते हैं। वे दुर्गम राह को भी अपनी शक्ति से सुगम बना लेते हैं। आकाश उनके सिर पर छाता लगाता है और प्रकृति-सुन्दरी उनके भाल पर तिलक लगाकर उन्हें बेताज दुनिया का बादशाह बना देती है। वास्तव में असली और सच्चे राजा लोगों के दिलों पर शासन करने वाले ये साधु पुरुष (सज्जन) ही हैं।

(ग) ऐसे दैवी वीर रुपया··· ···बड़ा बना देते हैं।

सन्दर्भ—पूर्ववत् ।

व्याख्या—लेखक का कहना है कि सच्चे वीर अपना नाम दानवीर की कोटि में गिनाने के लिए रुपया-पैसा अथवा धन-दौलत का दान नहीं देते। जब वे देने को तत्पर होते हैं तो अपने को ही न्यौछावर कर देते हैं। वे मानव जीवन व शरीर को तुच्छ समझते हैं। महात्मा बुद्ध ने जब एक राजा को निरीह मृग का शिकार करते देखा तो उसे बचाने हेतु अपने प्राणों की परवाह न कर बाणों के आगे अपना शरीर कर दिया। चाहे उनके प्राण चले जाते पर निरीह मृग तो बच जाता। ऐसे परोपकारी ही सच्चे वीर होते हैं। वे कभी किसी बड़े मौके पर वीरता दिखाने का इन्तजार न करके छोटे से मौके को ही महान् बना देते है।

(घ) वह वीर क्या··· ···जैसा का तैसा ही रहेगा।

सन्दर्भ—पूर्ववत् ।

व्याख्या—लेखक का कहना है कि सच्चे कर्मवीर का हृदय शीघ्र किसी घटना से प्रभावित नहीं होता। किसी भी परिस्थिति का सामना करने का उसमें असीम धैर्य होता है। सच्चे वीर टिन के बर्तन की भाँति शीघ्र ही गरम और शीघ्र ही ठण्डे हो जाने वाली नहीं होते। वे ऐसे थर्मामीटर की भाँति होते हैं जो बहुत दिनों तक आग पर तपने के बाद भी गरम न हों और हजारों वर्ष तक बर्फ में दबे रहने पर भी ठण्डे न हों। भौतिक विज्ञान के नियमों से

वह परे होता है। परिस्थितियाँ उसे नहीं, वह स्वयं परिस्थितियों को प्रभावित करता है।

(ङ) जय वहीं होती है··· ····की तरह बढ़ो।

सन्दर्भ—पूर्ववत्।

व्याख्या—लेखक का कहना है कि पवित्रता एवं प्रेम ही विजय दिला सकते हैं। यह संसार धर्म तथा अटल आध्यात्मिक नियमों से जुड़ा हुआ है। इन नियमों को आत्मसात् कर चलने वाला ही विजयी होता है। केवल 'काम करो' का नारा लगाना ही पर्याप्त नहीं अपितु काम आरम्भ करने से पहले अपने अन्दर काम करने का बल उत्पन्न करना आवश्यक है। इसके लिए अपने आत्मबल को दृढ़ करना होगा। व्यक्ति को अपना आध्यामिक बल वृक्ष की भाँति अन्दर ही अन्दर बढ़ाना होगा, तभी उसे हर कार्य में सफलता मिल सकती है।

(च) जब हम कभी··· ···बस्त जाया न हो।

सन्दर्भ—पूर्ववत्।

व्याख्या—लेखक का कहना है कि सामान्यतया मानव जब कभी वीरों की वीरता की गाथाएँ सुनता है तो उसके अन्दर एक उत्साह उत्पन्न होता है और वह कुछ वैसा ही कर दिखाने को आतुर हो उठता है। पर यह उत्साह स्थायी नहीं होता। उसका कारण केवल इतना ही है कि हमारे भीतर वीरता का मसाला आत्मबल नहीं होता और उसके अभाव में वीरता दिखाने का उत्साह केवल ख्याली महल बनाने जैसा क्षणभंगुर होता है। अतः यदि वीर बनना है तो टीन के बर्तन जैसा शीघ्र गरम और शीघ्र ठण्डा होना त्याग कर अपने जीवन के केन्द्र धर्म और अध्यात्म में अपने अस्तित्व को मिलाना होगा, सच्चाई की दृढ़ चट्टान पर खड़ा होना होगा। अपनी जिन्दगी को उस अदृश्य सत्ता को समर्पण कर देना होगा जिससे उस जीवन को बचाने की चिन्ता से मुक्त हो साहसपूर्ण कार्य करने का अधिक सुअवसर प्राप्त हो सके।

(३) क्रोध

(५) प्रश्न—अपनी पाठ्य-पुस्तक के आधार पर 'क्रोध' शीर्षक निबन्ध के लेखक का संक्षिप्त जीवन-परिचय देते हुए पाठ का सारांश लिखिए।

उत्तर—आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी : जीवन-परिचय—'क्रोध' नामक निबन्ध के लेखक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य के युग-प्रवर्तक एवं उद्धारकर्ता माने जाते हैं। आपका जन्म वैशाख शुक्ल ४ संवत् १९२१ को उत्तर प्रदेश के रायबरेली जिले के दौलतपुर ग्राम में श्री रामसहाय दूबे के घर में हुआ। आर्थिक कठिनाइयों के कारण अधिक शिक्षा नहीं प्राप्त कर सके और उन्होंने बम्बई जाकर २० रुपये मासिक पर रेलवे में डाक-तार विभाग में नौकरी की। यहाँ रहकर स्वाध्याय से हिन्दी, उर्दू, मराठी एवं संस्कृत का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया। यहाँ से हेड क्लर्क बन कर झाँसी आये। अब इन्होंने मासिक पत्रिकाओं में लिखना भी प्रारम्भ कर दिया। कुछ दिनों पश्चात् रेलवे की नौकरी छोड़ प्रयाग से प्रकाशित होने वाली पत्रिका 'सरस्वती' का सम्पादन करने लगे। लगभग १९-२० वर्षों तक इन्होंने बड़ी ही निपुणता एवं योग्यतापूर्वक सरस्वती का सम्पादन किया। संवत् १९८८ में इन्हें नागरी प्रचारिणी-सभा काशी द्वारा सर्वप्रथम हिन्दी के आचार्य की उपाधि से तथा सम्मेलन द्वारा 'साहित्य वाचस्पति' की उपाधि से अलंकृत किया गया।

श्री द्विवेदी बड़े ही स्वाभिमानी, निर्भीक, अध्ययनशील साहित्यकार थे। इनका स्वभाव कठोरता में दुर्वासा ऋषि जैसा और कोमलता में नवनीत जैसा था। सन्तान के अभाव में इनकी पत्नी मानसिक रूप से रुग्ण रहती थी तथा इसी दशा में संवत् १९६९ में उनका देहावसान भी हो गया जिससे द्विवेदीजी को गहरा धक्का लगा। द्विवेदीजी को अन्तिम दिनों में जलोदर रोग हो गया था और २१ दिसम्बर सन् १९३६ (पौष कृष्ण ३० संवत् १९९५) को उनका स्वर्गवास हो गया।

हिन्दी जगत् में द्विवेदीजी का नाम एक कुशल सम्पादक, प्रौढ़ निबन्धकार, समीक्षक, सफल अनुवादक, हिन्दी के प्रचारक एवं कवि के रूप में आदर के साथ लिया जाता है। आपने होशंगाबाद, झाँसी, कानपुर, इलाहाबाद तथा दौलतपुर आदि स्थानों में रहकर साहित्य-सेवा की है। आपने मौलिक ग्रन्थों के साथ ही अनुवाद कार्य भी किया है। आपने संस्कृत और अँग्रेजी, दोनों भाषाओं से हिन्दी में अनुवाद किया है।

द्विवेदीजी के प्रमुख अनूदित ग्रन्थ हैं—शिवमहिम्नस्तोत्र, गंगालहरी, अमृतलहरी, रघुवंश, कुमारसम्भव, मेघदूत, वेणीसंहार आदि। इनके मौलिक

ग्रन्थ हैं—नैषधचरित्र चर्चा, दार्शनिक परिभाषा कोश, नाट्यशास्त्र, सम्पत्ति-शास्त्र, वनिता-विलास, रसज्ञरंजन, साहित्यालाप, साहित्यसन्दर्भ आदि। इनके निबन्ध भावात्मक और विचारात्मक दोनों ही प्रकार के हैं। इनकी भाषा चुस्त, ठोस, परिमार्जित, विषयानुकूल और संस्कृतपरक होने के साथ ही व्याकरण के नियमों की अनुगामिनी है। इनके निबन्धों में आलोचनात्मक, व्यंग्यात्मक, वर्णनात्मक और विवेचनात्मक शैलियों का प्रयोग किया गया है। संकलित निबन्ध 'क्रोध' में द्विवेजीजी ने मनोविश्लेषण पद्धति का आश्रय लिया है। क्रोध का सम्बन्ध मनुष्य के अन्तःकरण और वाह्य व्यवहार दोनों से है। क्रोध मनुष्य के विवेक को भ्रष्ट कर देता है। मनुष्य चिड़चिड़ा और उसका चेहरा विकृत हो जाता है। मानवजीवन के सभी दुर्गुणों का क्रोध में समावेश रहता है।

क्रोध (पाठ-सारांश)—'क्रोध' आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी का भावात्मक समीक्षण से भरा मनोवैज्ञानिक विश्लेषणयुक्त निबन्ध है। इस निवन्ध में उन्होंने दर्शाया है कि क्रोध विवेक का परम शत्रु है। क्रोध का प्रथम आक्रमण विवेक पर ही होता है। यह एक आँधी के समान है जिसमें बाहर की कोई मदद काम नहीं आती। इस समय भीतर के सुविचार एवं चिन्तन ही काम आते हैं। यह सब होता है विवेक से और क्रोध सबसे पहले विवेक को ही नष्ट-भ्रष्ट कर देता है। क्रोधी मनुष्य को अच्छे-बुरे का ज्ञान नहीं रह जाता। वह अल्प कारण से भी अनायास ही क्रुद्ध हो जाता है। यदि वह क्रोधी के साथ धनी भी हो तो वह उग्र रूप धारण कर लेता है। इस प्रकार क्रोध हर प्रकार से बुरा है। क्रोध मन की क्षुद्रता एवं कायरता का द्योतक है। इसीलिए पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों, अज्ञानियों, रोगियों तथा बुढ्ढों को अधिक क्रोध आता है। ज्ञानी, वीर एवं सत्पुरुषों को क्रोध आता ही नहीं।

क्रोध दूसरों को दुःख देने के साथ अपने को भी दुःख देता है। यह असभ्यता का प्रतीक होने के साथ स्त्रियों और पुरुषों में द्वेष का कारण भी बनता है। मित्रों में भी द्रोह करा देता है। क्रोधी मनुष्य हर बुरे विकारों का भण्डार होता है। क्रोधी मनुष्य के पास दुःख, ईर्ष्या, भय, घमण्ड एवं अवमानना आदि विकार स्वतः आते हैं। इससे क्रोधी मनुष्य को ही सबसे ज्यादा हानि एवं दुःख उठाना पड़ता है।

निबन्ध के अन्त में श्री द्विवेदीजी ने क्रोध पर विजय प्राप्त करने के लिए मन में दृढ़ता से क्रोध न करने का प्रण लेने का उपदेश दिया है। इससे धीरे-धीरे उस प्रकार का व्यवहार करते हुए क्रोध को जीता जा सकता है। मानव जीवन को दुःखमय बना देने वाला यह क्रोध मनुष्य का महान् शत्रु है। क्रोध पर जिसने विजय पा ली, उसके लिए सभी कठिन कार्य सरल हो जाते हैं।

पर द्विवेदीजी यह भी मानते हैं कि क्रोध का बिलकुल परित्याग भी समीचीन नहीं है। गलत कार्य करने वाला यदि मधुर उपदेशों से नहीं सुधरता तो उस पर क्रोध करना उचित है। अपने कुटुम्बियों, अपने इष्ट मित्रों, बान्धवों या अन्य लोगों के आचरण में सुधार लाने वाला, ईश्वर में पूज्यबुद्धि उत्पन्न करने वाला, दया, उदारता और परोपकार में प्रवृत्ति लाने वाला क्रोध बुरा नहीं होता।

(६) प्रश्न—निम्नलिखित गद्य-खण्डों की ससन्दर्भ व्याख्या प्रस्तुत कीजिए।

(क) क्रोध इतना बुरा······बिगड़ उठता है।
(ख) क्रोध न तो······सत्पुरुषों को नहीं।
(ग) जिनको ईश्वर ने ·····हानि भी होती है।
(घ) क्रोध से बचने······काम करना सहज है।
(ङ) क्रोध को······क्रोध बुरा नहीं।

उत्तर—(क) क्रोध इतना बुरा···बिगड़ उठता है।

सन्दर्भ—प्रस्तुत गद्य-खण्ड हमारी पाठ्य-पुस्तक निबन्धायन के 'क्रोध' शीर्षक निबन्ध से उद्धृत है। इस निबन्ध के लेखक आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदीजी हैं। इसमें आचार्यजी ने 'क्रोध' नामक मानसिक अवस्था का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया है।

व्याख्या—क्रोध ऐसा बुरा मानसिक विकार है जो मनुष्य के सुविचारों को समूल नष्ट करने की चेष्टा करता है। क्रोध के नशे में व्यक्ति भले-बुरे का विचार नहीं करता। क्रोध साक्षात् मत्सर है जिसके कारण लोग क्षुद्र से क्षुद्र मनुष्य का भी मत्सर करने लगते हैं। क्रोधी व्यक्ति बिना कारण ही बात-बात में, प्रत्येक दुर्घटना पर, हर एक मनुष्य पर बिना कारण या सामान्य कारण पर बिगड़ उठता है। इसीलिए सभी लोग क्रोधी की निन्दा ही करते हैं।

(ख) क्रोध न तो······सत्पुरुषों को नहीं ।

सन्दर्भ—पूर्ववत् ।

व्याख्या—लेखक का कहना है कि क्रोध मनुष्यता, स्वभाव की सरलता अथवा आत्मा की शुद्धता का प्रतीक नहीं है । वह कायरता अथवा मन की क्षुद्रता का चिह्न है । इसीलिए पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों, नीरोग की अपेक्षा रोगियों, युवा पुरुषों की अपेक्षा वृद्धों और भाग्यवानों की अपेक्षा अभागों को अधिक क्रोध आता है । क्रोध क्षुद्र विचार वालों को ही शोभा देता है । सज्ञान, उदार और सत्पुरुषों को क्रोध शोभा नहीं देता ।

(ग) जिनको ईश्वर ने······अधिक हानि भी होती है ।

सन्दर्भ—पूर्ववत् ।

व्याख्या—लेखक का कहना है कि ईश्वर की कृपा से प्रभुता (धन, ऐश्वर्य आदि) प्राप्त व्यक्तियों को क्रोध अधिक घमण्डी बना देता है । क्रोध के कारण उनके सुविचारों पर एक अदृश्य अबूझ परदा पड़ जाता है । उन्हें उपदेश और शिक्षा क्लेशदायकदायी लगते हैं । श्रीमान् को भी द्वेष का विषय बना देता है । यदि कोई भाग्यहीन व्यक्ति क्रोधी हो तो उस पर कोई दया भी नहीं करता । उसकी स्थिति और कष्टदायी होती है । क्रोध में अनेक बुरे विचारों एवं विकारों का सम्मिश्रण होता है । दुःख, द्वेष, भय, तिरस्कार, घमण्ड, अविवेकिता, उतावलापन और निर्बोधता—ये सभी विकार क्रोधी व्यक्ति के अन्दर देखे जा सकते हैं । क्रोध करने वाला दूसरों को क्लेश कम पहुँचाता है और अपने कष्ट अधिक झेलता है । उसी की सबसे अधिक हानि भी होती है ।

(घ) क्रोध से बचने······काम करना सहज है ।

सन्दर्भ—पूर्ववत् ।

व्याख्या—लेखक का कहना है कि क्रोध को क्रोध करके दूर किया अथवा उससे बचा नहीं जा सकता । क्रोध से बचने के लिए धीरे-धीरे उस पर नियन्त्रण का अभ्यास दृढ़ता से करना चाहिए । पहले मनुष्य एक दिन के लिए प्रण करे कि कितनी भी हानि क्यों न हो, वह उस दिन क्रोध नहीं करेगा । इस प्रकार वह क्रमशः अभ्यास बढ़ाता जाए और उसे क्रोध न करने का स्वभाव हो जायेगा । क्रोध मनुष्य का पूर्ण शत्रु है जो सम्पूर्ण जीवन को दुःखमय बना देता है । अतः सुखी जीवन व्यतीत करने के लिए क्रोध पर विजय पाना

आवश्यक है। जिसने क्रोध को जीत लिया, उसके लिए सभी कठिन कार्य आसान हो जाते हैं।

(ङ) क्रोध को बिलकुल......वह क्रोध बुरा नहीं।

सन्दर्भ—पूर्ववत्।

व्याख्या—लेखक का कहना है कि जिस क्रोध से अपने कुटुम्बियों का, इष्ट मित्रों अथवा दूसरों का आचरण सुधरे, वह बुरा नहीं होता। पहले तो उन्हें उपदेश से, मधुरता से समझाने का प्रयास करना चाहिए। यदि तब भी न सुधरे तो उन्हें सुधारने के लिए उन पर क्रोध करना उचित ही है।

(४) कुसंग और सत्संग

(७) प्रश्न—अपनी पाठ्य-पुस्तक के आधार पर 'कुसंग और सत्संग' नामक पाठ के लेखक का संक्षिप्त जीवन-परिचय देते हुए पाठ का सारांश प्रस्तुत कीजिए।

उत्तर—रामचन्द्र शुक्ल : जीवन-परिचय—पाठ्य-पुस्तक निबन्धायन में संकलित निबन्ध 'कुसंग और सत्संग' के लेखक हिन्दी के मूर्धन्य समालोचक एवं निबन्धकार आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का जन्म सन् १८८० ई० में आश्विन पूर्णिमा के दिन बस्ती जिले के अगोना नामक ग्राम में हुआ। इनके पिता चन्द्रबली शुक्ल मिर्जापुर जिले में सदर कानूनगो थे, अतः इनकी हाईस्कूल तक की शिक्षा मिर्जापुर में ही हुई। बचपन से ही इन्हें साहित्य, इतिहास, मनोविज्ञान, कला आदि विषयों से लगाव था। ड्राइंग अध्यापक के रूप में जीवन के कार्यक्षेत्र में पदार्पण के पश्चात् इन्होंने साहित्यिक सेवा में मन लगाया और हिन्दी शब्दसागर के सम्पादक के रूप में नागरी प्रचारिणी सभा काशी में आ गये। कई वर्षों तक सभा की विभिन्न रूप से सेवा करने के पश्चात् काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग में विभागाध्यक्ष पद पर सन् १९३७ से १९४० ई० तक कार्यरत रहे। माघ सुदी ६ रविवार संवत् १९९७ वि० (१९५० ई०) में इनका स्वर्गवास हो गया।

रचनाएँ—आपने अंग्रेजी तथा बंगला की पुस्तकों का हिन्दी में अनुवाद किया। मौलिक रचनाओं के रूप में अनेक ग्रन्थों का प्रणयन भी किया। हिन्दी साहित्य का इतिहास एवं फारस का इतिहास, ये दो इनके इतिहास-ग्रन्थ हैं। सम्पादित ग्रन्थों की भूमिका के रूप में जायसी, तुलसीदास और सूरदास की

आलोचनाएँ शुक्लजी द्वारा प्रस्तुत की गयी हैं। रसमीमांसा में शुक्लजी ने विविध विषयों पर आलोचना-पद्धति से विचार किया है। भ्रमरगीतसार, भारतेन्दु-साहित्य, तुलसी-ग्रन्थावली और जायसी-ग्रन्थावली इनके सम्पादित ग्रन्थ हैं। विचारवीथी और चिन्तामणि इनके निबन्ध-संग्रह हैं।

भाषा-शैली—शुक्लजी की भाषा परिष्कृत, प्राञ्जल और विषयानुकूल होती है। रूपयोजना कर उसे मूर्त्तस्वरूप दे देना इनकी कला है। वाक्य-विन्यास सन्तुलित है। विचारों में क्रमबद्धता एवं पूर्वापर सम्बन्ध अविच्छिन्न रूप से पाया जाता है। संस्कृत के साथ अन्य भाषाओं का मेल सुसंगत रीति से शुक्लजी के निबन्धों में पाया जाता है। शब्द नपे-तुले और उपयुक्त हैं। कोई भी शब्द हटाया अथवा बदला नहीं जा सकता। वाक्य छोटे किन्तु सूत्ररूप में होते हैं। इनके निबन्धों की शैली विषय-प्रधान, विचारात्मक एवं व्यक्ति प्रधान है। उसमें गम्भीरता होते हुए भी रूखापन नहीं है। उनकी शैली निगमन शैली है। निबन्धों में सुसंगठित एवं गुम्फित विचार-शृंखला विद्यमान है। साहित्यिक सौन्दर्य निबन्ध को सरस बना देता है।

इस प्रकार शुक्लजी का व्यक्तित्व समीक्षक, निबन्ध-लेखक, कवि एवं इतिहासकार के रूप में हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि है। वास्तव में शुक्ल जी हिन्दी साहित्य के उच्चकोटि के गद्य-शैलीकार शिल्पी हैं।

कुसंग और सत्संग (पाठ-सारांश)—निबन्धकार आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी ने प्रस्तुत निबन्ध 'कुसंग और सत्संग' में उदाहरणों द्वारा दोनों के मानव जीवन पर पड़ने वाले प्रभावों का बड़े ही मार्मिक ढंग से विवेचन प्रस्तुत किया है। कुसंग (बुरे लोगों का साथ) होने पर सदा अवनति और हानि ही होती है, जब कि सत्संग हर प्रकार की उन्नति व विकास का मार्ग है। कुसंग व्यक्ति के बुद्धि-क्षय व सद्वृत्ति के विनाश का प्रमुख हेतु है। फूहड़ मजाक व गन्दे गीत मानव मस्तिष्क को जल्द प्रभावित करते हैं, अतः उनसे बचना चाहिए।

इंगलैण्ड के एक विद्वान् का उदाहरण देते हुए शुक्लजी ने कहा है कि वह अपने भाग्य को जीवनभर इसलिए सराहता रहा कि उसे राज-दरबार में स्थान न मिला। क्योंकि वह जानता था कि वहाँ बुरे लोगों की ही संगत रहती है, जो व्यक्ति के आध्यात्मिक विकास में बाधक है। शुक्लजी के विचार में बुरे लोगों की संगति क्षणभर में ही बुद्धि को भ्रष्ट कर देने वाली होती है।

बुरी बातें हमें बहुत समय तक याद रहती हैं, जब कि सदुपदेश जल्दी भूल जाता है। फूहड़ मजाक या गन्दे गीत जितनी आसानी व जल्दी से ध्यान में आते हैं, उतनी जल्दी अच्छी बातें नहीं। बुरी बातों को हम जितना ही भूलना चाहते हैं उतना ही अधिक याद आती हैं। अतः इनसे बचने के लिए अश्लील, फूहड़ और गन्दी बातों द्वारा हँसाने वालों से दूर रहना चाहिए। सामान्य बात समझकर इसे ध्यान से हटाना नहीं चाहिए। जिस तरह एक बार कीचड़ में पाँव पड़ जाने पर बार-बार पाँव कीचड़ में ही पड़ता जाता है, उसी प्रकार बुरे लोगों की संगति में एक बार पड़ जाने के बाद धीरे-धीरे व्यक्ति उसी का अभ्यस्त हो जाता है। विवेकशक्ति कुण्ठित हो जाती है, अतः हृदय को स्वच्छ एवं निष्कलंक बनाये रखने के लिए बुरी संगति से सदा दूर रहने का प्रयास करना चाहिए। शुक्लजी ने बुरी संगत के प्रभाव को दिखलाने के लिए एक कहावत उद्धृत की है—

काजल की कोठरी में कैसो हू सयानो जाय।
एक लीक काजल की लागि है पै लागि है॥

इसके विपरीत अच्छे समाज एवं अच्छी संगति व्यक्ति के जीवन पर अच्छा प्रभाव डालती है। इससे आत्मसंस्कार के कार्य में बड़ी सहायता मिलती है। प्रायः देखा जाता है कि जीविकादि के लिए गाँवों से शहर आये लोग बुरी संगत में पड़कर अपना विनाश स्वयं कर लेते हैं। इनके लिए साहित्यिक समाज में प्रवेश करना ही अच्छा है, जहाँ आगे बढ़ना, आज्ञापालन एवं गलतियों को क्षमा करना आदि सद्गुणों का ज्ञान होता है। बड़ों के प्रति सम्मान, बराबर के लोगों से प्रसन्नता एवं छोटों से कोमलता का व्यवहार करना सत्पुरुषों का लक्षण है।

अन्त में शुक्लजी ने सुझाव दिया है कि युवा लोगों को बुरे अनुभवों से बचने के लिए सदा अच्छे लोगों के बीच उठना बैठना चाहिए। प्रायः अधिकांश युवक बुरे लोगों की संगति में पड़कर सत्य एवं सौन्दर्य के अनुभव से वञ्चित हो लोकग्लानि एवं नीरस जीवन व्यतीत करते हैं। उनकी आत्मा जड़ हो जाती है और वे इस क्लेश से मुक्ति हेतु छटपटाते रहते हैं। इनका छटपटाना, तड़पना तभी दूर हो सकता है जब वे उस कलुषित समाज एवं परिवार से निकल कर किसी अच्छे समाज एवं परिवार में पड़ जायें। तभी उन्हें सम्मान मिलता है।

(८) प्रश्न—अपनी पाठ्य-पुस्तक के आधार पर अधोलिखित गद्यांशों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए।

(क) कुसंग का ज्वर……उठाती जायेगी।

(ख) बहुत से लोग ऐसे……गम्भीर या अच्छी बात नहीं।

(ग) जब एक बार मनुष्य……लागि है पै लागि है।

(घ) अच्छा समाज यदि मिले……रुचि के अनुकूल नहीं होते।

(ङ) समाज में प्रवेश करने से……क्षमा करना सीखते हैं।

(च) समाज एक परेड है……भले मानसों के लक्षण हैं।

(छ) युवा पुरुषों को……कुछ भी अनुभव नहीं रह जाता।

उत्तर—(क) कुसंग का ज्वर……उठाती जायेगी।

सन्दर्भ—प्रस्तुत गद्य-खण्ड हमारी पाठ्य-पुस्तक निबन्धायन में संकलित 'कुसंग और सत्संग' शीर्षक निबन्ध से उद्धृत है। इस निबन्ध के लेखक आचार्य रामचन्द्र शुक्लजी हैं। इन पंक्तियों में शुक्लजी ने कुसंग और सत्संग के प्रभाव का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया है।

व्याख्या—शुक्लजी का कहना है कि अनेक प्रकार के ज्वरों (तापों) में कुसंग भी एक प्रकार का ज्वर है, जो सबसे भयानक है। इसका प्रभाव व्यक्ति के नीति, सद्वृत्ति और बुद्धि के विनाश के रूप में दीख पड़ता है। युवा पुरुष की यदि संगत बुरी होगी तो वह उसके पैर में बँधी भारी पत्थर की चक्की सिद्ध होगी और दिन-प्रतिदिन उसे अवनति के गड्ढे में गिराती ही जायेगी। इसके विपरीत अच्छी संगत सहारा देने वाले हाथ के समान होगी जो उसके हर काम में सहायता देकर उसे उन्नति के शिखर पर पहुँचा देने वाली सिद्ध होगी।

(ख) बहुत से लोग ऐसे……गम्भीर या अच्छी बात नहीं।

सन्दर्भ—पूर्ववत्।

व्याख्या—शुक्लजी का कहना है कि ऐसे बहुत से लोग समाज में विद्यमान होते हैं जिनका साथ करना अच्छा नहीं होता। उनकी संगत से घड़ीभर में ही बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। उस घड़ीभर में ऐसी-ऐसी बातें कही जाती हैं जिनसे पवित्रता का नाश हो जाता है। बुराई अटल भाव से हृदय में घर कर लेती है। बुरी बातें हमारी धारणा में बहुत दिनों तक टिकती भी हैं। प्रायः सब

लोग इसे जानते हैं कि फूहड़ गीत व मजाक जितनी जल्दी याद हो जाते हैं और ध्यान पर चढ़ जाते हैं उतनी जल्दी कोई गम्भीर, उपदेशात्मक अच्छी बात ध्यान पर नहीं चढ़ती। इन बुरी बातों का असर इतना गहरा होता है, कि लाख चेष्टा कर भुलाने पर भी बार-बार याद आता ही रहता है।

(ग) जब एक बार मनुष्य……लागि है पै लागि है।

सन्दर्भ—पूर्ववत्।

व्याख्या—शुक्लजी का कहना है कि एक बार बुरी संगत में पड़ जाने वाला व्यक्ति बराबर उसी में धँसता चला जाता है। एक बार कीचड़ में पैर रखने के बाद व्यक्ति का ध्यान अपने पैरों की ओर से हट जाता है। वह यह नहीं देखता कि उसके पैर कहाँ पड़ रहे हैं। धीरे-धीरे वह गन्दगी का अभ्यस्त हो जाता है और उससे घृणा कम हो जाती है। विवेक कुण्ठित हो जाता है और भले बुरे की पहचान नहीं रह जाती। इस प्रकार अन्त में व्यक्ति बुराई का भक्त बन जाता है। अतः हृदय को उज्ज्वल और निष्कलंक रखने के लिए, बुराई से बचने के लिए अच्छा उपाय यही है कि बुरे लोगों की संगत रूपी छूत से बचे रहा जाय। बुरी संगत अच्छे-भले मानुषों को भी कलंकित कर देती है। इस सम्बन्ध में यह कहावत प्रसिद्ध है कि—

काजल की कोठरी में कैसोहू सयानो जाय।
एक लीक काजल की लागि है पै लागि है॥

अर्थात् कोई कितना ही बुद्धिमान् क्यों न हो, बुरी संगत से उसके चरित्र में थोड़ा-बहुत दोष आ ही जाता है।

(घ) अच्छा समाज यदि मिले ……रुचि के अनुकूल नहीं होते।

सन्दर्भ—पूर्ववत्।

व्याख्या—शुक्लजी का कहना है कि अच्छे समाज की संगति सदा अच्छी होती है। इससे आत्म-संस्कार को सुधारने व निखारने में सहायता मिलती है। प्रायः देखा जाता है कि गाँवों से नगरों में जीविकादि के लिए आने वाले लोग प्रथमतया किसी संगी-साथी के अभाव में बहुत उदास व घबड़ाते हैं तथा कई बार ऐसा भी होता है कि न चाहते हुए भी उनकी संगत ऐसे लोगों से हो जाती है जो उनकी रुचि के अनुकूल नहीं होते। ऐसे में बुराइयों का आना उनमें स्वाभाविक हो जाता है।

(ङ) समाज में प्रवेश करने से……क्षमा करना सीखते हैं।

सन्दर्भ—पूर्ववत्।

व्याख्या—शुक्लजी का कहना है कि व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व का यथार्थ मूल्य समाज में प्रवेश करने के बाद ही ज्ञात होता है। एक कोने में बैठकर कोई पुस्तक आदि हाथ में लेकर अपने को सबसे चतुर व बुद्धिमान् मानने वाले को समाज में आने पर ही पता चलता है कि वह उतना चतुर नहीं जितना कि समझता है। समाज में भिन्न-भिन्न प्रकार के लोग हैं। कोई एक बात में निपुण है तो दूसरा भिन्न बात में। सब एक से बढ़कर एक निपुण हैं। समाज में आकर ही यह पता चलता है कि दूसरों से अपनी भूल के लिए क्षमा कराने की कितनी आवश्यकता है और स्वयं भी दूसरों की भूल को क्षमा करना सीखना कितना महत्त्वपूर्ण है। व्यक्ति समाज में आने पर एवं कई ठोकरें खाने के बाद ही नम्रता और अधीनता का पाठ सीख पाता है।

(च) समाज एक परेड है……भले मानसों के लक्षण हैं।

सन्दर्भ—पूर्ववत।

व्याख्या—शुक्लजी का कहना है कि हमारा समाज एक फौजी व्यायामशाला या परेड है, जहाँ लोगों को आन्तरिक बुराइयों से लड़ना सिखाया जाता है। समाज में रहकर अपने साथियों के कदम से कदम मिलाकर आगे बढ़ना और अनुशासन मानना सिखाया जाता है। इससे भी आगे हमें दूसरों का ध्यान रखना, उनके लिए कुछ स्वार्थ त्याग करना सिखाया जाता है। स्वयं ही अच्छे संस्कारों के अभिलाषी युवक के लिए उचित है कि वह भले आदमियों के समाज में आवश्यक समझी जाने वाली रीतियों; यथा बड़ों के प्रति सम्मान और सरलता का व्यवहार, बराबर वालों से प्रसन्नता का व्यवहार और छोटों के प्रति कोमलता का व्यवहार आदि की कभी अवहेलना न करे। यही तो सज्जनों के असली चिह्न हैं।

(छ) युवा पुरुषों को……कुछ भी अनुभव नहीं रह जाता।

सन्दर्भ—पूर्ववत्।

व्याख्या—शुक्लजी का कहना है कि युवकों को बुरी संगत से बचाने का सीधा और सरल उपाय सत्संग है। अच्छे समाज में बैठने से प्रेम, शक्ति और आनन्द मिलता है। कुमार्ग पर पैर रखने से पहले या बुराइयों में फँसने से पहले सभी युवक प्राय: हिचकते हैं, खटकते हैं। अपनी प्रसन्नता से कोई बुराइयों में-

फँसना नहीं चाहता। यदि इस समय कोई उनको सहारा दे तो वे बुराइयों से उबर सकते हैं। कुसंग में पड़ जाने के बाद अधिकांश युवक लोक ग्लानि और घृणा की चक्की में पिसते चले जाते हैं और उनके जीवन में कोई आनन्द नहीं रह जाता। उनकी आत्मा जड़ हो जाती है और उन्हें सत्य तथा सौन्दर्य का अनुभव नहीं होता।

(५) कर्त्तव्य और सत्यता

(९) प्रश्न—अपनी पाठ्य-पुस्तक के आधार पर 'कर्त्तव्य और सत्यता' शीर्षक निबन्ध के लेखक का संक्षिप्त जीवन-परिचय देते हुए पाठ का सारांश लिखिए।

उत्तर—डॉ० श्यामसुन्दर दास : जीवन-परिचय—हिन्दी के महान् कलाकार लेखक डॉ० श्यामसुन्दर दास का जन्म आषाढ़ शुक्ल एकादशी, मंगलवार संवत् १९३२ (सन् १८५७ ई०) में वाराणसी के लाला देवीदास के घर हुआ। इनकी माता का नाम देवकी देवी था। इनके पूर्वज लाहौर से आकर काशी में बस गये थे। आपने प्रारम्भिक शिक्षा घर पर तथा वेसलियन मिशन स्कूल में प्राप्त की थी। बाद में क्वींस कालेज से बी० ए० तक शिक्षा ग्रहण की। जीवन में कड़े संघर्ष के साथ इन्होंने सेण्ट्रल हिन्दू कालेज तथा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में अध्यापन कार्य किया। आपने नागरी प्रचारिणी सभा काशी के सहयोग से 'वैज्ञानिक कोश', 'हिंन्दी शब्दसागर' आदि का सम्पादन भी किया। आपकी हिन्दी-सेवाओं से प्रभावित होकर हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग की ओर से साहित्य-वाचस्पति तथा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से डी० लिट् की मानद उपाधि प्रदान की गयी। सन् १९५४ में इनका स्वर्गवास हो गया।

रचनाएँ—हिन्दी भाषा और साहित्य, साहित्यालोचन, भाषा-विज्ञान, आत्मकथा, गोस्वामी तुलसीदास, रूपक-रहस्य, हिन्दी-शब्दसागर, वैज्ञानिक कोश आदि।

भाषा शैली—बाबू श्यामसुन्दरदास बहुमुखी साहित्य-प्रतिभा के धनी थे। आपकी ख्याति पत्रकार, निबन्धकार, समालोचक, कोशकार, भाषावैज्ञानिक और आत्मकथाकार के रूप में है। इनकी भाषा शुद्ध साहित्यिक खड़ी बोली है। भाषा शुद्ध संस्कृतनिष्ठ, सरल व परिमार्जित है। इन्होंने विषया-

नुकूल शैली का चयन किया है। विचारात्मक और गवेषणात्मक शैली प्रधान रूप से अपनायी गयी है। इनमें कृत्रिमता का नितान्त अभाव है। इनकी रचनाओं में भाषा की अपेक्षा बौद्धिकता का प्राधान्य दिखता है। गम्भीर विषय को सरल व सुबोध रूप में अभिव्यक्त करना इनकी मौलिक विशेषता है।

कर्त्तव्य और सत्यता (पाठ-सारांश)—डॉ० श्यामसुन्दर दास द्वारा लिखित निबन्ध 'कर्त्तव्य और सत्यता' मानव-जीवन का उपयोगी एवं महत्त्वपूर्ण पक्ष है। प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह अपने कर्त्तव्यों का सम्यक्तया पालन करे। कर्त्तव्य न करने से व्यक्ति समाज में लोगों की घृणा का पात्र बन जाता है और नीच की कोटि में गिना जाता है। कर्त्तव्यों का पालन पहले पहल बिना दबाव के सम्भव नहीं होता। इसका प्रारम्भ पहले घर से होता है, फिर समाज, राष्ट्र और विश्व के प्रति। मानव मात्र का जीवन विविध कर्त्तव्यों से भरा पड़ा है जिन्हें करना परमावश्यक है। कर्त्तव्य-पालन से ही चरित्र की शोभा बढ़ती है और यही मानव-धर्म है। कर्त्तव्य-पालन न्याय पर निर्भर है और न्याय को समझ लेने के पश्चात् कर्त्तव्य-पालन सरल हो जाता है।

मनुष्य के भीतर बुरे कर्मों से रोकने वाली और अच्छे कामों में प्रवृत्त करने वाली एक दिव्य शक्ति होती है। बुरे काम करके आप ही लज्जा आती है और आत्मा कोसती है। भौतिक सुख के लिए कर्त्तव्यों का त्याग करना कभी भी सन्तोषप्रद या आनन्ददायक नहीं हो सकता। मनुष्य को अपनी आत्मा के कहने पर चलना चाहिए। आत्मा उसे गलत काम से रोकती है तो उसे आवश्यक होने पर भी न करे। इस व्यस्त एवं कर्त्तव्यों के जाल में जकड़े सांसारिक प्रपञ्च में हमें विवेक से काम लेना चाहिए और धर्मनिष्ठा से अपने कर्त्तव्य-पथ पर आगे बढ़ना चाहिए। धर्म-पालन में चित्त की चंचलता और लक्ष्य की अनिश्चितता, आलस्य और स्वार्थपरता सबसे बड़ी बाधाएँ हैं। इनका यथासम्भव परित्याग कर देना ही उचित है। अतः आत्मा द्वारा प्रेरित कार्य को बिना कुछ सोचे-समझे ही झट पूरा कर देना ही धर्म है। ऐसा करने का अभ्यास हो जाने पर किसी बात की चिन्ता नहीं रहती।

(१०) प्रश्न—अधोलिखित गद्यांशों की सन्दर्भ सहित व्याख्या प्रस्तुत कीजिए।

(क) कर्त्तव्य वह वस्तु······कर्त्तव्यों को देखते हैं।
(ख) हम सब लोगों के मन में······डर और पछतावा नहीं होता।
(ग) धर्मपालन करने के मार्ग······किसी बात का भय न रहेगा।
(घ) इस संसार में······नाम आदर के साथ लिया जाता है।
(ङ) कर्त्तव्य-पालन और सत्यता में······नहीं चल सकता।
(च) संसार में जितने पाप हैं······अपने लिए झूठ बोलें।
(छ) संसार में बहुत से ऐसे नीच······कुत्सित कर्म है।
(ज) इसीलिए हम सब लोगों का······सुखी बने रहेंगे।

उत्तर–(क) कर्त्तव्य वह वस्तु······कर्त्तव्यों को देखते हैं।

सन्दर्भ—प्रस्तुत गद्य-खण्ड हमारी पाठ्य-पुस्तक निबन्धायन में संकलित 'कर्त्तव्य और सत्यता' शीर्षक निवन्ध से उद्धृत है। इस निबन्ध के लेखक बाबू श्यामसुन्दर दास जी हिन्दी के मूर्धन्य विद्वानों में गिने जाते हैं। इन पंक्तियों में लेखक ने कर्त्तव्य और कर्त्तव्य-पालन के विभिन्न पहलुओं का गम्भीरतापूर्वक विवेचन सोदाहरण प्रस्तुत किया है।

व्याख्या—लेखक का कहना है कि कर्त्तव्य मानव मात्र का परम धर्म है, जिसका पालन न करने से व्यक्ति का चरित्र कुत्सित और निन्दनीय हो जाता है तथा वह दूसरों की दृष्टि में नीच समझा जाता है। कर्त्तव्य-पालन स्वाभाविक रूप से बिना कुछ दबाव के सम्भव नहीं होता। प्रारम्भिक अवस्था में मन अपने आप कर्तव्य में प्रवृत्त नहीं होता। कर्त्तव्य घर और बाहर सर्वत्र व्याप्त है। घर में माता-पिता और सन्तान के बीच, पति-पत्नी, स्वामी-सेवक और स्त्री-पुरुष के बीच तथा घर के बाहर इष्ट-मित्रों, पड़ोसियों और प्रजाओं के बीच परस्पर कर्त्तव्यों का सम्बन्ध बना हुआ है। संसार का जीवन ही कर्तव्यों से भरा है। इन कर्त्तव्यों का पूरा-पूरा पालन ही मानव मात्र का धर्म है।

(ख) हम सब लोगों के मन में······डर और पछतावा नहीं होता।

सन्दर्भ—पूर्ववत्।

व्याख्या—लेखक का कथन है कि मनुष्य मात्र के मन में बुरे कर्मों से रोकने वाली और अच्छे कामों की ओर प्रवृत्त करने वाली एक अदृश्य अलौकिक शक्ति होती है। देखने में आता है कि व्यक्ति कोई बुरा कार्य करके स्वयं ही दुःखी व लज्जित होता है। उदाहरण के लिए कोई लड़का मिठाई चुरा कर खाने के पश्चात् स्वयं ही डरता और पछताता है। इसके विपरीत कभी कुछ न

चुरा कर खाने वाला बालक सदा प्रसन्न रहता है और उसके मन में कभी किसी प्रकार का भय अथवा पछतावा नहीं होता है।

(ग) धर्मपालन करने के मार्ग में···· ····भय न रहेगा।

सन्दर्भ—पूर्ववत्।

व्याख्या—बाबू श्यामसुन्दर दासजी का कहना है कि चित्त की चंचलता, लक्ष्य का अस्थिर होना और मन का दुर्बल होना—कर्त्तव्य-पालन में सबसे बड़ी बाधाएँ हैं। मनुष्य की आत्मा उसे भले और बुरे कर्मों का ज्ञान कराकर कर्त्तव्य की ओर प्रवृत्त करती है, जब कि आलस्य और स्वार्थपरता उसे कर्त्तव्य से विरत करती है। इसलिए व्यक्ति को चाहिए कि मन को दृढ़ करके आत्मा का निर्देश बिना आलस्य किये झटपट पूरा कर दे। ऐसा करते-करते कर्त्तव्य-पालन रूपी धर्म की आदत पड़ जायेगी। तब किसी विघ्न-बाधा की चिन्ता नहीं रहेगी।

(घ) इस संसार में जितने··· ····आदर के साथ लिया जाता है।

सन्दर्भ—पूर्ववत्।

व्याख्या—बाबू श्यामसुन्दर दासजी का कहना है कि अपने कर्त्तव्य को ही सर्वश्रेष्ठ उद्देश्य-प्राप्ति मान कर चलने वाले व्यक्ति ही संसार में सत्कार और आदर के पात्र तथा बड़े लोगों में गिने जाते हैं। वे परोपकारी पुरुष अपनी कर्त्तव्यनिष्ठा के साथ पूरा न्याय का बर्ताव करते हैं। संसार की वे ही जातियाँ सम्माननीय, आदरणीय और पूजनीय होती हैं जिनमें कर्त्तव्यपरायणता विद्यमान है।

(ङ) कर्त्तव्य-पालन और सत्यता में···· ····नहीं चल सकता।

सन्दर्भ—पूर्ववत्।

व्याख्या—बाबू श्यामसुन्दर दासजी का कहना है कि कर्त्तव्य-पालन के साथ सत्यता का घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। कर्त्तव्य-पालनकर्त्ता अपने कामों व वचनों में सत्यता का बर्ताव भी अवश्य रखता है, तभी वह ठीक समय पर उचित रीति से अच्छे कामों को करता है। अपने कामों में सफलता पाने के लिए कर्म व वचन में सत्यता को सम्मिलित करना परम आवश्यक है। संसार में कोई काम झूठ बोलने से नहीं चल सकता। उदाहरण के लिए यदि किसी परिवार के सभी सदस्य परस्पर झूठ का आश्रय लें तो उस घर में कोई काम ठीक से नहीं होगा और सब लोग दुःखी रहेंगे।

(च) संसार में जितने पाप हैं···· ····झूठ बोलें।

सन्दर्भ—पूर्ववत्।

व्याख्या—लेखक का कहना है कि झूठ संसार के सब पापों से बुरा है। झूठ की उत्पत्ति पाप, कुटिलता और कायरता से होती है। प्रायः स्वार्थी लोग सच्चाई से मुँह चुराते हुए अपनी स्वार्थलिप्सा में अपने सेवकों व घर के अन्य सदस्यों को भी झूठ बोलना सिखाते हैं। पर वह नौकर आदि जब उनके साथ भी झूठ का वर्ताव करते हैं तो उन्हे आश्चर्य और क्रोध होता है। अतः सच्चाई का ध्यान न रखने वालों को नौकरों के झूठ पर आश्चर्य और क्रोध नहीं करना चाहिए।

(छ) संसार में बहुत से ऐसे नीच···· ····कुत्सित कर्म है।

सन्दर्भ—पूर्ववत्।

व्याख्या—लेखक का कहना है कि झूठ बोलने में ही अपनी चतुराई समझने वाले या सत्य को छिपाकर धोखा देने वाले या झूठ बोल कर अपने को निर्दोष सिद्ध करने वाले तथा इसी में अपना गौरव मानने वाले नीच, निन्दनीय और कुत्सित अनेक लोग इस संसार में भरे पड़े हैं। ये लोग ही समाज और राष्ट्र की गरिमा को नष्ट करके सर्वत्र दुःख और सन्ताप का प्रसार करते हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि झूठ बोलना स्पष्ट न बोलने से अधिक हानिकर, निन्दनीय और घृणित कर्म है।

(ज) इसीलिए हम सब लोगों का··· ····सुखी बने रहेंगे।

सन्दर्भ—पूर्ववत्।

व्याख्या—बाबू श्यामसुन्दर दास अपने निबन्ध का समापन करते हुए कहते हैं कि व्यक्ति को चाहिए कि अधिकतम हानि की चिन्ता किये बिना ही झूठ का सर्वथा परित्याग कर सत्य का दृढ़तापूर्वक पालन करे। समाज में सत्यवादी का सम्मान और झूठे का निरादर होता है। अतः सुखी व सम्माननीय जीवनयापन करने के लिए तथा अपने कर्त्तव्य का पूरा-पूरा पालन करने एवं सत्य बोलने को अपना धर्म मानना होगा। तब मनुष्य अपने कर्त्तव्य-पालन में किसी प्रकार का कष्ट अनुभव नहीं करेगा और अपने मन में सदा प्रसन्न, सन्तुष्ट और सुखी रहेगा।

(६) शिक्षा का उद्देश्य

(११) प्रश्न—अपनी पाठ्य-पुस्तक निबन्धायन के आधार पर 'शिक्षा का उद्देश्य' नामक निबन्ध के लेखक का संक्षिप्त परिचय देते हुए पाठ का सारांश प्रस्तुत कीजिए।

उत्तर—डॉ० सम्पूर्णानन्द : जीवन-परिचय—पाठ्य-पुस्तक निबन्धायन में संकलित निबन्ध 'शिक्षा का उद्देश्य' के लेखक हिन्दी के प्रख्यात समालोचक डॉ० सम्पूर्णानन्द जी बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। आपका जन्म काशी नगर के सम्भ्रान्त कायस्थ परिवार विजयानन्दजी के यहाँ १ जनवरी १८९० ई० को हुआ। इनकी शिक्षा वाराणसी के ही क्वींस कालेज और प्रयाग में सम्पन्न हुई। आपका कार्यजीवन अध्यापक से प्रारम्भ होकर स्वतन्त्रतासंग्राम-सेनानी, सम्पादक और राजनेता एवं प्रशासक के रूप में समाप्त हुआ। इस दीर्घकाल के अनुभवों का इनके साहित्य पर भी गहरा प्रभाव दीख पड़ता है। संस्कृत, हिन्दी और अंग्रेजी तीनों भाषाओं पर समान रूप से इनका अधिकार था। इतिहास, राजनीति, दर्शन, समाजशास्त्र, विज्ञान और साहित्य इनके प्रिय विषय रहे। इनके प्रत्येक निबन्ध में इन सभी विषयों की झलक स्पष्ट दीख पड़ती है। आपकी रचना 'समाजवाद' पर मंगलाप्रसाद पारितोषिक पुरस्कार भी प्राप्त हुआ था। आपका स्वर्गवास काशी नगरी में ही सन् १९६९ ई० में हुआ।

रचनाएँ—डॉ० सम्पूर्णानन्दजी की रचनाओं को दो वर्गों में रखा जा सकता है—(१) पत्रिकाओं में प्रकाशित फुटकर निबन्ध तथा (२) पुस्तक रूप में प्रकाशित ग्रन्थ। पुस्तक रूप में प्रकाशित ग्रन्थों की संख्या पच्चीस के लगभग मानी जाती है। इनमें 'समाजवाद', 'आर्यों का आदिदेश', 'चिद्विलास', 'गणेश', 'जीवन-दर्शन', 'अन्तर्राष्ट्रीय विधान', 'पुरुषसूक्त', 'व्रात्यकाण्ड', 'पृथ्वी से सप्तर्षिमण्डल', 'भारतीय सृष्टिक्रम-विचार' आदि पुस्तकें अधिक महत्त्वपूर्ण हैं।

भाषा-शैली—डॉ० सम्पूर्णानन्दजी स्वाभावतः एक गम्भीर विचारक और मननशील चिन्तक, वैज्ञानिक व दार्शनिक व्यक्ति थे। इसीलिए सामान्यतया उनकी भाषा-शैली विचारात्मक, संयमित और तार्किक पारिभाषिकता से युक्त है। इनकी शैली को प्रधानतया तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है—

(१) विचारात्मक, (२) व्याख्यात्मक और (३) ओजपूर्ण । विचारात्मक शैली में निबन्धों की भाषा पारिभाषिक तथा तत्समप्रधान, लघुवाक्य और विषयानुकूल प्रवाहमयी है । व्याख्यात्मक शैली में इन्होंने दर्शन आदि गूढ़ विषयों को सरल भाषा एवं संयत भाषा में प्रस्तुत किया है । ओजपूर्ण शैली में इनके मौलिक निबन्ध हैं, जो सम-सामयिक विषयों पर भावावेश में लिखे गये हैं ।

इस तरह स्पष्ट है कि डॉ० सम्पूर्णानन्दजी ने अपनी बहुमुखी प्रतिभा का परिचय राजनीति, प्रशासन, अध्यापन और साहित्य सर्जना, सभी क्षेत्रों में समान रूप से दिया है । इनकी रचनाओं में कल्पना और कला की रंगीनी का अभाव होते हुए भी विषयवस्तु को सरलता से सुबोध बनाने की सबल शक्ति है । इनकी भाषा कहावतों व मुहावरों के बिना ही सबल, सजीव, साहित्यिक, प्रौढ़ एवं प्राञ्जल हैं ।

शिक्षा का उद्देश्य (पाठ-सारांश)—डॉ० सम्पूर्णानन्दजी प्राचीन आदर्शों की अच्छाइयों को समाज में पुनर्जीवित एवं सबल रूप से स्थापित करने के समर्थक रहे । वे छात्र को समाज एवं राष्ट्र की नींव मानते थे । अतः उसे वर्तमान भौतिकवादी मैं-तू के धरातल से ऊपर उठा देना चाहते थे । छात्रों को वे लोककल्याणकारी और परमार्थी बना देना चाहते थे । प्रस्तुत निबन्ध उसी दृष्टिकोण से लिखा गया है । निबन्ध के प्रारम्भ में ही विद्वान् लेखक ने शिक्षा का उद्देश्य पुरुषार्थ-सिद्धि बताते हुए शिक्षा और दर्शन को मानव-जीवन से सम्बद्ध करके देखा है । प्रत्येक समाज व राष्ट्र का आधार दार्शनिक मत अवश्य होना चाहिए । केवल प्रतीयमान उपयोगिता के आधार पर वैयक्तिक और सामाजिक जीवन को चलाना कठिन होता है । इसका सोदाहरण विवेचन करने के पश्चात् सम्पूर्णानन्दजी ने प्राचीन वर्णाश्रम व्यवस्था को उचित बतलाया है ।

दर्शन का मुख्य प्रतिपाद्य है आत्मा का स्वरूपबोध । आत्मा ज्ञान, शक्ति और आनन्द का कोष है । परन्तु अविद्यावशात् व्यक्ति उस ज्ञान को भूल चुका है । आत्मस्वरूप को भूल उसे इधर-उधर तलाश कर रहा है, भटकता हुआ दुःख अनुभव कर रहा है । आत्मस्वरूप ज्ञान ही परम पुरुषार्थ है और इसकी सिद्धि ही शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य है । इस पुरुषार्थ-सिद्धि में शिक्षा के साथ राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक व्यवस्थाएँ भी सम्बद्ध हैं, जो पुरुषार्थ-सिद्धि के मार्ग में आने वाली अड़चनों का निवारण करती हैं ।

आत्मसाक्षात्कार योगाभ्यास के द्वारा सम्भव है, जो छात्र को स्वयं ही अपना गुरु ढूढ़ कर करना होगा। अध्यापक, विद्यालय और समाज एवं प्रशासन छात्र को योगाभ्यास का अधिकारी बनाने के लिए अनुकूल वातावरण उत्पन्न करने में सहायक मात्र हो सकते हैं। इस दृष्टिकोण से पाठ्यक्रम भी ऐसा होना चाहिए जो उनके चरित्र-निर्माण व विकास में सहायक सिद्ध हो। अध्यापक का कर्त्तव्य है कि वह छात्र में चित्त एकाग्र करने की क्षमता व अभ्यास का विकास करे। एकाग्रता ही आत्मसाक्षात्कार की कुञ्जी है। छात्र में एकाग्रता लाने के लिए उसके अन्दर मैत्री, करुणा, मुदिता और अपेक्षा के भावोन्मेष के साथ ही निष्काम कर्म में प्रवृत्त होना आवश्यक है। यह कार्य आसान न होते हुए भी परमावश्यक है। आरम्भ से ही छात्र में परहितसाधन, लोकसंग्रह और समस्त जीव-सेवा के भाव उत्पन्न किये जाने चाहिंए। चित्त को एकाग्र करने में काव्य, चित्र, संगीत और कलाओं का विशेष महत्त्व है। अतः अध्यापक का कर्त्तव्य है कि वह छात्रों में वस्तु-सौन्दर्य के प्रति अभिरुचि उत्पन्न करे, जिससे वह मैं-तू, मेरा-तेरा आदि भावों से उठकर सर्वत्र एकत्वानुभूति कर सके।

समस्त लोकहितसाधक कर्मों को धर्म की संज्ञा देते हुए सम्पूर्णानन्दजी ने अध्यापकों से अनुरोध किया है कि वे छात्रों में प्रत्येक विषयाध्यापन द्वारा धर्म-प्रवृत्ति को जगायें। अनुसन्धान और आलोचनात्मक बुद्धि द्वारा अपनी संस्कृति की अमूल्य धरोहर को आगे आने वाली पीढ़ी तक पहुँचाना अध्यापक का पुनीत कर्त्तव्य है। इस कार्य में समाज व राष्ट्र को अध्यापकों का सहयोग करना आवश्यक है। समुचित वातावरण का निर्माण विद्यालय नहीं, अपितु परिवार, समाज और राष्ट्र ही कर सकता है। सामान्यतया अध्यापक योगी नहीं होता। तब भी उसे अपने अन्दर एक सच्चे योगी जैसी दृष्टि विकसित करनी चाहिए। उसे छात्रों द्वारा की जाने वाली प्रत्येक भूल को, जैसे बड़ा भाई छोटे भाई की भूल को क्षमा करता है, उसी प्रकार सहानुभूति और प्रेम के साथ सुधारना होता है। उसे अपने शिष्य को इस प्रकार धीरे-धीरे सन्मार्ग पर लाना है जिससे शिष्य एवं समाज दोनों का कल्याण हो। छात्र की बुद्धि शुद्ध होने पर तथा उसके क्षुद्र वासनाओं से ऊपर उठ जाने के पश्चात् उसे अनन्त ज्ञान, शक्ति एवं आनन्दमय स्वरूप का आभास मिलने लगेगा और वह परमपुरुषार्थ की सिद्धि का अधिकारी बन जायेगा। इस पुरुषार्थ-सिद्धि का

अधिकारी बनाना ही शिक्षा का चरम उद्देश्य है। सिद्धि तो छात्र को स्वयं ही प्राप्त करनी होगी।

(१२) प्रश्न—अधोलिखित गद्यांशों की अपनी पाठ्य-पुस्तक के आधार पर ससन्दर्भ व्याख्या प्रस्तुत कीजिए।

(क) अध्यापक और समाज.... ....उद्देश्य है।

(ख) जो समाज अपने वैयक्तिक.... ....कठिन हो जायेगा।

(ग) आत्मा अजर और अमर.... परिणाम दुःख होता है।

(घ) आत्मसाक्षात्कार का साधन.... ....उत्पन्न किया जाय।

(ङ) एकाग्रता ही आत्मसाक्षात्कार.... ....नष्ट करता है।

(च) चित्त को क्षुद्र वासनाओं से विरत... ...निष्काम होना है।

(छ) धर्म उन सब कामों की समष्टि... ...वह पहुँच जाय।

(ज) साधारणतः शिक्षक योगी नहीं... ...अधिकारी बन सकेगा।

उत्तर—(क) अध्यापक और समाज... ...उद्देश्य है।

सन्दर्भ—प्रस्तुत गद्य-खण्ड पाठ्य-पुस्तक 'निबन्धायन' में संकलित निबन्ध 'शिक्षा का उद्देश्य' से उद्धृत है। इस निबन्ध के लेखक हिन्दी के प्रसिद्ध निबन्धकार और शिक्षाविद् डॉ० सम्पूर्णानन्दजी हैं। इन पंक्तियों में डॉ० सम्पूर्णानन्दजी ने शिक्षा का उद्देश्य पुरुषार्थ-सिद्धि में साधन होना बताते हुए अध्यपाक और समाज के कर्त्तव्य का विवेचन किया है।

व्याख्या—डॉ० सम्पूर्णानन्दजी का कहना है कि वर्तमान समय में अध्यापक और समाज दोनों के सामने 'शिक्षा का उद्देश्य' एक गम्भीर समस्या बन गयी है। उद्देश्य के अनुसार ही पाठ्य-क्रम का निर्धारण होता है। शिक्षा का उद्देश्य स्वयं में स्वतन्त्र न होकर मनुष्य-जीवन के पुरुषार्थ-सिद्धि से सम्बद्ध है। इस पुरुषार्थ-सिद्धि के लिए छात्र को समुचित वातावरण प्रदान करना और उसे पुरुषार्थ-सिद्धि का योग्य अधिकारी बनाना ही शिक्षा का उद्देश्य है।

(ख) जो समाज अपने वैयक्तिक.... ...कठिन हो जायेगा।

सन्दर्भ—पूर्ववत्।

व्याख्या—डॉ० सम्पूर्णानन्दजी का मत है कि प्रत्येक समाज को सुखी व विकसित होने के लिए किसी न किसी दार्शनिक मत को अपनाना ही होगा। उस समाज की राजनैतिक, सामाजिक और पारिवारिक व्यवस्था का आधार

दार्शनिक मत ही होगा। वैयक्तिक या सामूहिक जीवन का आधार प्रतीयमान (तत्काल अनुभवगम्य) उपयोगिता के आधार पर चलाने में अनेक कठिनाइयों को झेलना पड़ेगा। सबके आदर्शों में स्वार्थ के कारण टक्कर होने लगेगी। एक बात एक को उचित लगेगी तो दूसरे को अनुचित। इस प्रकार मनुष्य को अपना कर्त्तव्य निर्धारण करना कठिन हो जायेगा।

(ग) आत्मा अजर और अमर ...... परिणाम दुःख होता है।

सन्दर्भ—पूर्ववत्।

व्याख्या—डॉ० सम्पूर्णानन्दजी का मत है कि आत्मा (आत्मस्वरूप) अविनाशी, अजर और अमर है तथा इसमें अनन्त ज्ञान, शक्ति और आनन्द का अक्षय भण्डार भरा है जहाँ दुःख लेशमात्र भी नहीं। परन्तु अविद्या के कारण व्यक्ति उस आत्मस्वरूप को भूल चुका है जिससे वह अपने को अल्पज्ञान वाला मान कर आत्मशक्ति को भी अल्प समझ बैठता है। इस अल्पशक्तिमत्ता के परिणामस्वरूप उसका जीवन दुःखी हो जाता है।

(घ) आत्मसाक्षात्कार का साधन ...... वातावरण उत्पन्न किया जाय।

सन्दर्भ—पूर्ववत्।

व्याख्या—डॉ० सम्पूर्णानन्दजी का कहना है कि आत्मसाक्षात्कार योग-साधना द्वारा ही किया जा सकता है, जिसे सिखाने का प्रबन्ध न राजा कर सकता है, न पाठशाला का अध्यापक, अपितु आत्मज्ञान के अभिलाषी व्यक्ति को स्वयं ही अपने प्रयास से योग्य गुरु को ढूढ़ना होगा। परन्तु समाज और अध्यापक छात्र को योगाभ्यास के अधिकारी बनाने में अनुकूल वातावरण उत्पन्न कर सहायता पहुँचा सकते हैं। पुरुषार्थ को सामने रखकर पाठ्यक्रमों द्वारा छात्र के चरित्र को सँवारा जा सकता है।

(ङ) एकाग्रता ही आत्मसाक्षात्कार ...... नष्ट करता है।

सन्दर्भ—पूर्ववत्।

व्याख्या—डॉ० सम्पूर्णानन्दजी अध्यापक का कर्त्तव्य बताते हुए कहते हैं कि अध्यापक को चाहिए कि वह छात्र के अन्दर अपने चित्त को एकाग्र करने का अभ्यास डाले। यह एकाग्रता ही साक्षात्कार का साधन है। चित्त को एकाग्र करने के लिए अपने अन्दर मैत्री, करुणा, मुदिता और अपेक्षा का भाव जागृत कर निष्काम कर्म में प्रवृत्त होना पड़ेगा। दूसरे के सुख से सुखी होना मैत्री, दुःखी होना करुणा, अच्छा काम करते देख प्रसन्न हो उसे

प्रोत्साहित करना मुदिता और दुष्कर्म करने वाले का विरोध करते हुए भी उससे शत्रुता न रखना ही अपेक्षा है। ये सभी भाव एकाग्रता के बाधक ईर्ष्या-द्वेष आदि भावों को कम कर देते हैं, चित्त को बल प्रदान करते हैं। इन राग-द्वेषादिकों को अकेले निष्काम कर्म भी नष्ट कर देता है, पर यह आसान नहीं है। निष्काम कर्म में अपना ख्याल कम और दूसरों के हित का ख्याल अधिक किया जाता है।

(च) चित्त की क्षुद्र वासनाओं से··· ···प्रेम निष्काम होता है।

सन्दर्भ—पूर्ववत्।

व्याख्या—डॉ० सम्पूर्णानन्दजी का कहना है कि चित्त को क्षुद्र वासनाओं (राग-द्वेषादि) से दूर रखने में कला द्वारा सफलता पायी जा सकती है। काव्य, संगीत एवं चित्र आदि का रसास्वादन शरीर तथा इन्द्रियों के बन्धन को शिथिल कर चित्त को अलौकिक संसार में खींच लेता है और वह आध्यात्मिक जगत् में विचरण करने लगता है। अध्यापक का कर्त्तव्य छात्रों में सौन्दर्य के प्रति प्रेम उत्पन्न करना है। यह सौन्दर्य-प्रेम निष्काम होता है और इसमें व्यक्तिगत आशा और आकांक्षा नहीं रहती।

(छ) धर्म उन सब कामों की समष्टि··· ····वह पहुँच जाय।

सन्दर्भ—पूर्ववत्।

व्याख्या—डॉ० सम्पूर्णानन्दजी का कहना है कि धर्म का तात्पर्य केवल पूजा-पाठ तक ही सीमित नहीं है। धर्म समस्त कल्याणकारी कामों की समष्टि का नाम है। व्यक्तिगत कल्याण समाज-कल्याण से भिन्न नहीं है। क्योंकि मनुष्य के अनेक गुण, भोग और सुख समाज में रहकर ही विकसित और प्राप्त हो सकते हैं। इसीलिए समाज को ध्यान में रखकर ही धर्म का आदेश किया जाता है। मानव-समाज देव व पशु-पक्षी आदि से भी जुड़ा है, इसलिए इन सबके प्रति भी मनुष्य के कर्त्तव्य हैं। समाज में मनुष्य को अपने पूर्वजों की संस्कृति को सुरक्षित रखते हुए रहना है तथा उसे अपने पीछे आने वालों तक सुरक्षित पहुँचाना भी है। इस तरह मनुष्य के सामाजिक कर्त्तव्यों की डोर पूर्वजों से लेकर वंशजों तक फैली हुयी है।

(ज) साधारणतः शिक्षक योगी··· ···अधिकारी बन सकेगा।

सन्दर्भ—पूर्ववत्।

व्याख्या—डॉ० सम्पूर्णानन्दजी का कहना है कि यद्यपि शिक्षक योगी

नहीं होता, परन्तु उसे अपने शिष्य के प्रति एक योगी जैसी भावना ही रखनी चाहिए। उसे सोचना चाहिए कि वह अनेक शरीरों में भ्रमण के पश्चात् नरदेह-प्राप्त शिष्य को यदि ठीक मार्ग पर लगाकर यथोचित चारित्रिक विकास प्राप्त करने में सम्बल जुटा सकता है तो इससे शिष्य के साथ ही समाज का भी भला होगा। वह यदि परिस्थितियों से अभिभूत हो भटकती हुयी एवं प्रतिक्षण अपनी आत्मा के वन्धनों को तोड़ती हुयी बुद्धि को शुद्ध कर उसे क्षुद्र वासनाओं से ऊपर उठा सके तो शिष्य की आत्मा सवल हो अनन्त ज्ञान-शक्ति-आनन्दमय स्वरूप का आभास करने लगेगी और वह अपने परम पुरुषार्थ (आत्मज्ञान) को सिद्ध करने का अधिकारी वन जायेगा।

(७) गिल्लू

(१३) प्रश्न—पाठ्य-पुस्तक निवन्धायन के आधार पर 'गिल्लू' शीर्षक निवन्ध के लेखक का संक्षिप्त परिचय देते हुए पाठ का सारांश लिखिए।

उत्तर—महादेवी वर्मा : जीवन-परिचय—हिन्दी साहित्य की प्रसिद्ध कवयित्री और लेखिका सुश्री महादेवी वर्मा का जन्म उत्तरप्रदेश के फर्रुखाबाद नामक स्थान में सन् १९०७ ई० में हुआ। आपके पिता गोविन्दप्रसाद वर्मा इन्दौर में अध्यापक थे और माँ भगवद्भक्ति में आस्था रखने वाली एक धार्मिक महिला थी। महादेवी की प्रारम्भिक शिक्षा इन्दौर में तथा उच्च शिक्षा प्रयाग में सम्पन्न हुई। माँ के भजन-कीर्तन से ही इनमें बचपन से काव्य के प्रति आसक्ति का अंकुरण हुआ। प्रयाग महिला विद्यापीठ के प्रधानाचार्या का पद ग्रहण कर सफलतापूर्वक उसका निर्वाह किया। छायावादी चार प्रमुख कवियों में महादेवी भी एक हैं। इनकी साहित्यिक सेवा के लिए भारत सरकार द्वारा 'पद्मभूषण' की उपाधि से तथा उत्तरप्रदेश सरकार द्वारा विधान परिषद् की सदस्यता से अलंकृत किया गया। राष्ट्र-संकट के दिनों में इन्होंने व्यापक मानवीय संवेदना से ओत-प्रोत साहित्यकार की भूमिका का निर्वाह किया।

रचनाएँ—महादेवी एक प्रसिद्ध कवयित्री के साथ सफल गद्य-लेखिका भी हैं। 'नीहार', 'रश्मि', 'सान्ध्यगीत', 'नीरजा', 'दीपशिखा', 'यामा' आदि इनके प्रसिद्ध काव्यग्रन्थ तथा 'अतीत के चलचित्र', 'स्मृति की रेखायें', 'शृंखला

की कड़ियाँ', साहित्यकार की आस्था', 'क्षणदा', 'पथ के साथी' आदि उनकी गद्य-रचनाओं के प्रमुख संग्रह हैं। महादेवी का गद्य भावुकता, चित्रात्मकता तथा अलंकृति से भरा है। उसमें सरसता के कारण पद्य का-सा आनन्द मिलता है। उनके निबन्ध चार प्रकार के हैं—संस्मरणात्मक, विवरणात्मक, विचारात्मक और समीक्षात्मक।

भाषा-शैली—इनकी भाषा सर्वाधिक तत्सम शब्दों से अलंकृत खड़ी बोली है। संस्कृत का गहन अध्ययन होने के कारण इनकी रचना में अर्थ-गाम्भीर्य और प्रसंग-गर्भत्व ओत-प्रोत है। लाक्षणिकता इनकी शैली का प्राण है। सूत्रात्मक वाक्य इनकी शैली को अधिकाधिक रोचक, मनोरञ्जक एवं अर्थवान् बना देते हैं। तत्सम शब्दों के साथ ही लोकप्रचलित उर्दू, फारसी और अंग्रेजी के शब्द भी यत्र-तत्र प्रयुक्त हुए हैं। लोकोक्तियों, मुहावरों एवं कहावतों ने भाषा को प्राणवत्ता प्रदान की है। इनकी भाषा चित्रमयी, रेखा-चित्र निर्माण करने में सक्षम एवं यथार्थ रूप प्रस्तुत करने की विलक्षण शक्ति वाली है।

गिल्लू (पाठ-सारांश)—गिल्लू नामक निबन्ध महादेवीजी के 'मेरा परिवार' नामक रेखाचित्र से संकलित है। इसमें सुश्री महादेवी वर्मा ने लघु-प्राण गिलहरी (गिल्लू) के स्वभाव का सजीव चित्रण किया है। अपनी सशक्त लेखनी से इस छोटे से रेखाचित्र में आत्मीयता, ममता तथा स्नेहिल भावनाओं को बड़े ही मार्मिक ढंग से चित्रित किया है। निबन्ध संस्मरणात्मक शैली में है। एक दिन महादेवीजी को आँगन में सोनजुही के पौधे में खिली एक पीली कली देखकर उसके नीचे समाधिस्थ गिल्लू का स्मरण हो आया। वह पौधा हीं उसका प्रासिस्थल और समाधि दोनों था। उन्हें लगा कली के रूप में गिल्लू एक बार फिर जीवित हो उठा है। गिल्लू एक छोटा-सा गिलहरी का बच्चा था जिसे महादेवीजी ने कौओं से बचाकर जीवन प्रदान किया था। क़मरे में खिड़की से लटकती फूल की डलिया ही गिल्लू का घर रहा। उसकी समझदारी और कार्यकलाप पर घर के सभी सदस्य को आश्चर्य था।

गिल्लू महादेवीजी के निकट अधिक सुख अनुभव करता था और उनका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करने के नये-नये तरीके इजाद करता। कभी वह इधर से उधर दौड़ता था या खिड़की के परदे पर सरसराहट के साथ तब तक चढ़ता उतरता जब तक महादेवी उसे उठकर स्वयं न पकड़ लें। कभी-कभी महादेवी

तंग आकर उसे एक लिफाफे में रख देती तब वह उसी दशा में अगले दो पञ्जों और सिर को बाहर किये घण्टों उसी दशा में पड़ा रहता। भूख लगने पर चिक-चिक की आवाज करता और काजू या बिस्कुट मिल जाने पर उसी प्रकार दीवाल के सहारे लिफाफे में बैठा कुतर कर खाया करता। महादेवीजी को चौंकाने के लिए वह लुका-छिपी का खेल भी खेलता था। कभी गमलों के पीछे तो कभी परदों की ओट में छिप जाता। महादेवी की थाली में भोजन करने वाला पहला प्राणी था।

महादेवीजी के मोटर दुर्घटना में घायल हो जाने पर गिल्लू बहुत दुःखी था। जितने दिनों महादेवीजी अस्पताल में रहीं, वह अपने घोंसले से बाहर नहीं निकला। उसने भोजन भी नहीं किया। जब कभी महादेवीजी अस्वस्थ होतीं, वह उनके तकिये पर सिरहाने बैठकर उनका सिर अपने नन्हें पंजों से सहलाया करता। गर्मी के दिनों में वह महादेवीजी के निकट रखी सुराही पर चिपका बैठा रहता और इस प्रकार शीतलता का सुख लेता रहता।

गिलहरियों का जीवन प्रायः दो वर्षों का ही होता है। अतः गिल्लू के जीवन का अन्त भी आ गया। उसने अन्तिम दिन दिनभर न कुछ खाया, न पिया। रात को चुपचाप झूले से उतरा और महादेवीजी की प्राणदायिनी उँगली से चिपक गया। उसका शरीर ठण्डा हो रहा था। महादेवीजी ने हीटर जलाकर उसके शरीर को गर्म करने का प्रयास किया, किन्तु व्यर्थ रहा। प्रभात वेला में किसी और जन्म में जागने के लिए वह सो गया। इसे सोनजुही के पौधे के नीचे समाधि दे दी गयी और उसका झूला उतार कर रख दिया गया।

इस प्रकार सोनजुही में खिली कली को देख महादेवीजी को गिल्लू का याद आना स्वाभाविक था। जिसे उन्होंने संस्मरणात्मक शैली द्वारा रेखाचित्र में अंकित कर दिया है। इस निबन्ध द्वारा मानवेतर प्राणियों की बुद्धिमत्ता और संवेदनशीलता का पता चलता है। प्रेम और दया आदि भाव मानवेतर प्राणियों में भी विद्यमान हैं।

(१४) प्रश्न—अपनी पाठ्य-पुस्तक के आधार पर अधोलिखित गद्यांशों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए।

(क) सोनजुही में आज······लघुप्राणी की खोज है।

(ख) हमारे बेचारे पुरखे······प्रयुक्त करते हैं।

(ग) गिल्लू इनमें अपवाद……नीचे फेंक देता था ।

(घ) गिलहरियों के जीवन की……स्थिति में पकड़ा था ।

(ङ) उसका झूला……सन्तोष देता है ।

उत्तर—(क) सोनजुही में आज……लघुप्राणी की खोज है ।

सन्दर्भ—प्रस्तुत गद्य-खण्ड हमारी पाठ्य-पुस्तक 'निबन्धायन' में संकलित 'गिल्लू' शीर्षक निबन्ध से उद्घृत है । इस निबन्ध की लेखिका प्रसिद्ध कवयित्री सुश्री महादेवी वर्माजी हैं । इन्होंने इस निबन्ध में लघुकाय अल्प प्राणी गिल्लू के जीवन को अंकित किया है ।

व्याख्या—सुश्री महादेवीजी अपना एक संस्मरण सुनाती हुयी लिखती हैं कि आँगन में सोनजुही के पौधे में खिली एक कली ने अचानक मुझे उसके तले समाधिस्थ लघुकाय प्राणी गिल्लू का स्मरण करा दिया । वह भी उन्हें चौंकाने के लिए इसी लता में छिप जाता और फिर अचानक निकलकर उनके कन्धों पर चढ़कर चौंका देता । उन दिनों महादेवीजी को इस लता में खिलने वाली कली की खोज होती परन्तु आज इस खिली कली में उन्हें गिल्लू की तलाश है । उन्हें लगता है कि गिल्लू ही कली रूप में दूसरा जन्म लेकर आया है ।

(ख) हमारे बेचारे पुरखे……प्रयुक्त करते हैं ।

सन्दर्भ—पूर्ववत् ।

व्याख्या—सुश्री महादेवी का कहना है कि कौआ एक विचित्र प्राणी है जो हमारे समाज में एक साथ ही समादरित और अनादरित दोनों है । अपने लक्षणों से ही वह अति सम्मानित और अति अपमानित होता है । पितृपक्ष में आदर के साथ कौओं को बुलाकर ग्रास (बलि) दी जाती है । ऐसा माना जाता है कि पितर लोग श्राद्ध में भाग लेने हेतु काक रूप में अवतीर्ण होते हैं । काक प्रिय व्यक्ति के आगमन की शुभ सूचना भी अपनी कर्कश ध्वनि में ही देता है । तब इसका काँव-काँव मधुर लगता है । पर साहित्यिक और बोल-चाल में 'कौआ' और इसका 'काँव-काँव' दोनों ही अवमानना अर्थ में लिया गया है ।

(ग) गिल्लू इनमें अपवाद……नीचे फेंक देता था ।

सन्दर्भ—पूर्ववत् ।

व्याख्या—महादेवीजी 'गिल्लू' के स्वभाव का चित्रण करती हुई कहती हैं कि वन्य प्राणी होते हुए भी उसमें मानवीय सम्पर्क से मानवीय गुण बहुत

शीघ्र संक्रमण कर गये। घर के किसी भी पालतू पशु-पक्षी को उनके साथ थाली में भोजन करने का साहस न था। परन्तु गिल्लू यह साहस करता था। पहले तो वह भोजन के समय आकर थाली में ही बैठने का प्रयास करता, फिर महादेवी के सिखाने पर वह मेज पर थाली के करीब बैठ अपने अगले पंजों से चावल का एक-एक दाना निकालकर सफाई के साथ खाने लगता। उसका प्रिय भोजन काजू था। काजू न मिलने पर वह अन्य चीजें या तो लेता ही नहीं था या उसे झूले से नीचे फेंक दिया करता और इस प्रकार अपनी नाराजगी प्रकट करता।

(घ) उसी बीच मोटर दुर्घटना······कम खाता रहा।

सन्दर्भ—पूर्ववत्।

व्याख्या—सुश्री महादेवी का कहना है कि मानवेतर प्राणियों में भी संवेदना होती है। इसका उदाहरण देती हुई वह अपने मोटर दुर्घटना में घायल होकर अस्पताल में भर्ती रहने के दिनों के संस्मरण को उद्धृत करती हैं। इन दिनों गिल्लू उनके कमरे में पड़े अपने झूले में ही पड़ा उनके आने की प्रतीक्षा किया करता। जब कभी कोई दरवाजा खोलता झट वह झूले से उतर कर नीचे आता और फिर दूसरे को देख निराश हो वापस चला जाता। अस्पताल से लौट कर जब महादेवी ने झूले की सफाई की तो उसमें पड़े काजू के दाने गवाही दे रहे थे कि गिल्लू ने या तो उतने दिनों तक कुछ खाया ही नहीं या बहुत कम खाया है।

(ङ) गिलहरियों के जीवन की अवधि······स्थिति में पकड़ा था।

सन्दर्भ—पूर्ववत्।

व्याख्या—सुश्री महादेवीजी का कहना है कि गिलहरियों का जीवन प्रायः दो वर्षों का ही होता है और इस प्रकार गिल्लू के जीवन की अन्तिम घड़ी भी आ पहुँची। उस दिन दिनभर उसने मृत्यु-यातना से कुछ खाया-पिया नहीं और झूले से बाहर भी नहीं आया। रात को अपनी जीवनदात्री महादेवी के पास एक बार पुनः जीवन-रक्षा की आशा लिए आया और उनकी उसी उँगली को पकड़ कर चिपक गया जिसे उसने बचपन के दिनों में मरणासन्न स्थिति में पकड़कर उबरा था। महादेवीजी ने उसके ठण्डे हो रहे शरीर को हीटर जलाकर एक बार चेतन करने का प्रयास किया। परन्तु कालचक्र के आगे उनका विज्ञान मात खा गया और प्रभात की प्रथम किरण का दर्शन

किसी अन्य जीवन में करने की लालसा लिए गिल्लू सो गया। वह फिर नहीं जगा।

(८) जमुना के तीरे-तीरे

(१५) **प्रश्न**—अपनी पाठ्य-पुस्तक निबन्धायन के आधार पर डॉ० विद्यानिवास मिश्र का संक्षिप्त परिचय देते हुए उनके निबन्ध 'जमुना के तीरे-तीरे' का पाठ्य-सारांश प्रस्तुत कीजिए।

उत्तर—डॉ० विद्यानिवास मिश्र : जीवन-परिचय—वर्तमानकाल के हिन्दी गद्यकारों में डॉ० विद्यानिवास मिश्र अग्रगण्य हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हजारीप्रसाद द्विवेदी के बाद मिश्रजी ही सांस्कृतिक सन्दर्भों में लोकपरम्परा को रंजक एवं रोचक शैली में अनुप्राणित करने वाले गद्यकार हैं। गहन अनुभूति एवं चमत्कारपूर्ण अभिव्यक्ति के द्वारा लोकजीवन तथा लोकसंस्कृति के श्रृंगार की अभिव्यक्ति के साथ ही जीवन की विविध विसंगतियों एवं विषमताओं का सुन्दर चित्र आपके निबन्धों में उभरा है। आपका जन्म गोरखपुर जिले में सन् १९२६ ई० में पकड़डीहा ग्राम में सम्भ्रान्त ब्राह्मण परिवार में हुआ। प्रारम्भिक शिक्षा माध्यमिक स्तर तक गोरखपुर में प्राप्त कर इलाहाबाद से संस्कृत में एम० ए० उत्तीर्ण किये। 'पाणिनीय व्याकरण के विश्लेषण' विषय पर उन्हें पी० एच० डी० की मानद उपाधि मिली। उत्तर प्रदेश सरकार के अनेक कार्यालयों में अनेक पदों पर कार्य करने के बाद आपने शिक्षा विभाग और पत्रकारिता से सम्बन्ध जोड़ा। कई वर्षों तक अनेक विश्वविद्यालयों में हिन्दी के वरिष्ठ प्रोफेसर का कार्य करने के बाद काशी विद्यापीठ और सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय में कुलपति पद को भी अलंकृत किया। ये प्रसिद्ध भाषावैज्ञानिक माने जाते हैं।

रचनाएँ—मिश्रजी निबन्धकार और समीक्षक हैं। अनेक रूपधारी निबन्ध अपने लालित्य और कमनीयता के मधुर संयोग से ओत-प्रोत राष्ट्र-चेतना को झकझोर देने वाले हैं। मिश्रजी की रचनाएं निम्न हैं—

कदम की फूली डाल, तुम चन्दन हम पानी, आँगन का पंछी, बनजारा मन, बसन्त आ गया पर कोई उत्कण्ठा नहीं, मैंने सिल पहुँचायी, मेरे राम का मुकुट भींग रहा है, छितवन की छाँह आदि संकलित निबन्ध-संग्रह तथा 'हिन्दी शब्दसम्पदा' और रीति-विज्ञान इनके समीक्षा-ग्रन्थ हैं।

भाषा-शैली—मिश्रजी ने निबन्ध की प्रचलित सभी शैलियों को अपनाया है और उनको सफलतापूर्वक निखारा है। भावात्मक, विचारात्मक, समीक्षात्मक, वर्णनात्मक तथा संस्मरणात्मक निबन्ध-शैलियों में इन्होंने अनेक निबन्ध प्रस्तुत किये हैं। भावुकता, बौद्धिक चिन्तन एवं मनन, आस्फालित रागात्मकता, कल्पना का विलास, आलंकारिक शैली में भावों की रमणीय अभिव्यंजना उनकी शैली की प्रमुख विशेषताएँ हैं। संस्कृत के विद्वान् होने के कारण भाषा शुद्ध तत्सम हिन्दी है, परन्तु इन्होंने भाषा को कभी बोझिल नहीं होने दिया है और आंचलिक शब्दों, लोकप्रचलित उर्दू, फारसी और अंग्रेजी के शब्दों का समुचित प्रयोग किया है। हिन्दी कविता एवं लोकगीतों के उद्धरण तथा हास्य-व्यंग्य इनकी भाषा को अधिक मनोरञ्जकता व चारुता प्रदान करते हैं। आपने आवश्यकतानुसार उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों का भी प्रयोग अपने निबन्ध में किया है।

जमुना के तीरे-तीरे (पाठ-सारांश)—प्रस्तुत निबन्ध डॉ० विद्यानिवास मिश्र द्वारा लोकगीत की एक पंक्ति को आधार बनाकर विश्लेषणात्मक एवं गवेषणात्मक शैली में लिखा गया समीक्षात्मक निबन्ध है। प्राचीनकाल से ही जमुना (यमुना) नदी भारत की सात मोक्षदायिनी नदियों में ख्यात है। विद्वान् लेखक इसी जमुना के किनारे-किनारे फैली संस्कृति को रेतभरे कछारों, करील के कुञ्जों, बबूल के वनों, पलाश की लाली और कुश की नुकीली हरीतिमा में तलाश करता भटकता रहा है। जमुना का दूसरा किनारा जहाँ रेतीला और वीरान जंगल जैसा है, वहीं 'दोआबा' क्षेत्र सस्यश्यामला और फलों के बोझ से लदा है। यहाँ तुलसीदास के प्रयाग के संगम-वर्णन को स्मरण करते हुए मिश्रजी ने जमुना को 'कलिमलहरनी' और करमकथा (कर्ममार्ग का उपदेश-कर्त्री) के रूप में स्मरण किया है। जमुना का रास्ता गंगा आदि की तरह घुमाव-कटाव वाला न होकर सीधा है। जलधारा में गहराई होते हुए भी कुण्ड, तोड़-मरोड़दार धारा या घुमरीदार खतरनाक भँवर नहीं है, जिससे डूबने का खतरा हो। पानी का बहाव मन्द है और जिसे एक बार तैरना आ जाय वह नदी की धार पकड़े आराम से बिना हाथ-पैर हिलाये आगे बढ़ सकता है। इसका सघन नील जल पारदर्शी होकर कर्म-पथ में अणु-अणु के दर्शन को सिद्ध करता है।

मिश्रजी ने जमुना के तीरे-तीरे चलने में अपनी जीवन-यात्रा को जोड़कर देखा है और उसमें आये भटकाव, उतार-चढ़ाव का आँकलन किया तो पाया कि चिन्तन के उलझे क्षणों में उनकी जीवन-नौका किसी कुघाट पर जा लगी और जब चौंक कर जागे तो उनका ज्ञान घाट पर सिर धुनती लहरों के साथ चूर-चूर हो रहा था, अपने को नियन्ता समझने की अहम्भावना लौटती लहरों के साथ डूब रही थी।' पर लेखक को लगता है कि रेतीली सरस्वती की भाँति वह भी युगों के बाद जहाँ से चला थां, वहीं लौट आया है, आगे नहीं बढ़ सका है। प्रगति का यह धीमापन रेतमयी सरस्वती की प्रसादी है, जो मरीचिका की भाँति लुभाने वाली तो है पर ज्ञान की नसावनी भूख आगे नहीं बढ़ने देती।

लेखक के अनुसार कर्म-पथ में सबसे ज्यादा डर अपने ज्ञान से है, अतः ज्ञान से बढ़कर कोई भ्रामक तत्त्व नहीं है। इसलिए लेखक का उपदेश है कि कर्म-पथ पर अन्धाधुन्ध घुड़दौड़ करने वाला ही आगे निकल सकता है। कर्मगंगा गंगा-जमुना में नौकादौड़ में जो दूसरों को धकियाते हुए डूबने की चिन्ता किये बिना नौका दौड़ाता गया वह आगे निकल गया और जो बचा-बचाकर चला, पीछे रह गया। बुद्धिमान् लोग इसे 'योग्यता का अतिजीवन' (सरवाइनल आफ दी फिटेस्ट) कहते हैं। आज बुद्धि का अर्थ व्यवहारबुद्धि या काँइयापन माना जाने लगा है। आज का युग धूर्तता का है। धूर्तता से मनुष्य सभी प्राणियो को परास्त कर सृष्टि में मूर्धन्य बन चुका है।

मिश्रजी के अनुसार यमुनारूपी कर्मपथ पर निष्काम भाव से चलने वाले को शुभाशुभ, कर्त्तव्याकर्त्तव्य और सुख व दुःख की अनुभूति बाधक नहीं होती। एक बार इस गम्भीर धारा में साहस कर कूदने वाला स्वयं ही नौका बन जाता है और धारा उसे स्वयं गन्तव्य तक पहुँचा देती है। अन्त में मिश्रजी यमुना के किनारे चलते रहने और उसके श्यामल सौन्दर्य पर ही सन्तुष्ट दीख पड़ते हैं।

(१६) प्रश्न—अधोलिखित गद्यांशों की अपनी पाठ्य-पुस्तक के आधार पर ससन्दर्भ व्याख्या प्रस्तुत कीजिए।

(क) जाने कब से··· ···हाथ नहीं लगा है।

(ख) मैं आज युगों के बाद भी··· ···उलझा पड़ा रहता है।

(ग) यह भी लोग कहते हैं कि··· ···विलुप्त हो गयी है ।

(घ) सुना है यमुना और यमराज··· ····हहकार जरूर सुनी है ।

(ङ) सुनता हूँ उस धारा में एक बार······आवश्यकता नहीं रह जाती ।

(क) जाने कब से··· ···हाथ नहीं लगा है ।

सन्दर्भ—प्रस्तुत गद्य-खण्ड पाठ्य-पुस्तक निबन्धायम में संकलित निबन्ध 'जमुना के तीरे-तीरे' शीर्षक से उद्धृत है। इस निबन्ध के लेखक डॉ॰ विद्यानिवास मिश्रजी हैं। इन पंक्तियों में इन्होंने यमुना नदी की धारा से होने वाले बौद्धिक चिन्तन का विवेचन किया है।

व्याख्या—मिश्रजी का कहना है कि वे जमुना के तीरे-तीरे बरसों से चल रहे हैं। बीच-बीच में उन्हें यमुना की कल-कल ध्वनि में कुछ सन्देश भी मिलता है। परन्तु जब तक वे उसका चिन्तन कर अर्थबोध का प्रयास करते तब तक वह कल-कल अपने आप शान्त हो जाता है और चिन्तन में खोये लेखक को क्लान्ति और विवशता के अतिरिक्त कुछ नहीं मिलता। लेखक को अपना ज्ञान-गर्व तुच्छ-सा लगता है।

(ख) मैं आज युगों के बाद भी······उलझा पड़ा रहता है ।

सन्दर्भ—पूर्ववत् ।

व्याख्या—मिश्रजी का कहना है कि मानव ज्ञान के क्षेत्र में प्रकृति के रहस्य को अभी भी पूर्णतया नहीं समझ सका है। वह पूर्वजों द्वारा किये गये चिन्तन का ही पिष्टपेषण कर रहा है, उससे आगे नहीं बढ़ सका है। कारण जली-सूखी रेतीली सरस्वती के विस्तीर्ण वालुका से मरीचिका का मधुर संगीत है, जो चलने वाले को वास्तविक मरीचिका से भी अधिक खिझाने और पागल बना देने वाला है। बुद्धिमान् मानव वास्तविक जलधारा के संगीत को न सुन बालू में जल तलाशता रह जाता है; ब्रह्म-विचार के ज्ञानमार्ग पर भटका रह जाता है, जब कि कर्म-पथ पर चलने वाले लोग क्षितिज पार कर आँखों से ओझल हो जाते हैं। यह ज्ञानपिपासा मनुष्य को सुन्न कर निराशा, हीनता, ग्लानि और उदासी ही देता है। मनुष्य के हाथ जीवन-नौका की डाँड नदी पार ले जाने के लिए भरपूर प्रयास से चलाते हैं, मन पीछे के कछारों में उलझा रहता है और इस प्रकार उत्साह के साथ भीतर में निष्फलता की भावना सिसकती रहती है।

(ग) यह भी लोग कहते हैं कि··· ···विलुप्त हो गयी है।

सन्दर्भ—पूर्ववत्।

व्याख्या—मिश्रजी लोकोक्ति का उद्धरण देते हुए कहते हैं कि जो सीधा चलता है, वह आगे नहीं बढ़ पाता। इसके विपरीत धूर्त्तता या व्यवहार बुद्धि के बल पर आज का मानव सभी शक्तिशाली प्राणियों को हरा कर सृष्टि का सर्वोच्च शक्तिशाली प्राणी बन गया है। मानव जाति में भी जो चतुराई या धूर्तता में जितनी प्रवीण है वह उतनी ही अधिक उन्नत एवं समृद्ध है तथा सिधाई और सच्चाई पर चलने वाली जाति भटकती हुयी अपना अस्तित्व स्वयं ही खो दिया है।

(घ) सुना है यमुना और यमराज··· ···हहकार जरूर सुनी है।

सन्दर्भ—पूर्ववत्।

व्याख्या—मिश्रजी का कहना है कि यमुना नदी की धारा में अविराम गति से कर्मोपदेश का विधि-निषेधमय थप्-थप् का उपदेश चलता रहता है और शुभाशुभ कर्म का सन्देश निरन्तर सुनाई पड़ता है। ऐसा इसलिए भी होता है कि यमुना कर्मफल के लेखा-जोखा के ठेकेदार यमराज की बहन है। इस थप्-थप् की ध्वनि में इतना माधुर्य है कि एक बार इसे सुन लेने के बाद मन-मस्तिष्क में यह रच-बस जाती है तथा कान इसे सुनने को अभ्यस्त हो जाते हैं। इसके बिना जीवन दूभर हो जाता है। बाद में दूर आगे जाती गंगा की लहरों का संगीत मधुर सरस होते हुए भी पूर्ण रूप से सन्तुष्ट नहीं करती। यमुना की उस कर्म-कथा की थप्-थप् को लेखक ने भी प्रतिकूल हवा से अपनी नौका पर जूझते हुए अवश्य सुना है।

(ङ) सुनता हूँ, उस धारा में एक बार······आवश्यकता नहीं रह जाती।

सन्दर्भ—पूर्ववत्।

व्याख्या—मिश्रजी का कहना है कि यमुना नदी की धारा में उतरने के बाद व्यक्ति को अपना हाथ-पाँव मारने की आवश्यकता नहीं रहती। धारा उसे स्वयं बहा ले जाती है। इसमें डूबने और बचने का कर्त्तव्याकर्त्तव्य विचार नहीं जाता। पाप-पुण्य का बोध भी नहीं रह जाता। सब कुछ उस धारा में समर्पित हो जाता है। इतना अवश्य है कि इस कर्मगा यमुना की धारा में उतरना भीरुओं का कार्य नहीं है। जो अपने प्राणों का मोह त्याग कर ऊँचे कगार

से छलांग लगाता है, यमुना की धारा उसे अपना लेती है और वह धारा के सहारे चुपचाप चलता जाता है। उसे किसी कृत्रिम नौका की आवश्यकता नहीं रह जाती।

सम्पूर्ण निबन्ध में मिश्रजी ने संसारभर की मानव जाति को भक्ति, ज्ञान और कर्म के आधार पर बाँट कर विश्लेषण करते हुए कर्मयोगी को उत्तम सिद्ध किया है। इसमें भक्तजन गंगा की धारा में तरी के सहारे भव-नदी पार कर जाते हैं, जब कि कर्मरथ यमुना में तैरने वाले कर्मयोगी भी निष्काम भाव से विना प्रयास ही नदी की धारा के सहारे किनारा पा जाते हैं। ज्ञानी सदा सरस्वती नदी की भाँति शुष्क निष्फलता में सुवकता अपने दुर्भाग्य को कोसता रह जाता है।

(९) बादलों की छाँव तले

(१७) प्रश्न—पाठ्य-पुस्तक निबन्धायन के आधार पर 'बादलों की छाँव तले' निबन्ध के लेखक डॉ० श्रीप्रसाद का संक्षिप्त परिचय देते हुए पाठ-सारांश प्रस्तुत कीजिए।

उत्तर—डॉ० श्रीप्रसाद—'निबन्धायन' में संकलित निबन्ध 'बादलों की छाँव तले' के लेखक डॉ० श्रीप्रसाद का जन्म आगरा जिले के पारना नामक ग्राम में पण्डित रामचरण चुराटिया के यहाँ सन् १९३२ ई० में हुआ। आपकी अधिकांश शिक्षा वाराणसी में ही हुई। आपने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से सन् १९५७ में एम० ए० (हिन्दी) तथा सन् १९७४ ई० में काशी विद्यापीठ से पी० एच० डी० की उपाधि प्राप्त की। आपकी साहित्य-सर्जना का आरम्भ बाल-साहित्य लेखन से हुआ। काशीराज-न्यास वाराणसी के तत्त्वावधान में सम्पादित 'रामचरितमानस' के सम्पादन विभाग तथा नागरी प्रचारिणी सभा काशी द्वारा सम्पादित 'हिन्दी शब्दसागर' के सम्पादन में आपने कार्य करने के पश्चात् अध्यापन कार्य प्रारम्भ कर दिया। वे सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग में अध्यापन कार्य करते हुए सेवा-निवृत्त हुए हैं। सन् १९४९ से ही साहित्य-सर्जना में अनवरत लगे डॉ० श्रीप्रसाद बाल-साहित्य के साथ प्रौढ़ साहित्य-सर्जना में भी ख्याति अर्जित कर चुके हैं। नवलेखन युग के सफल निबन्धकारों में इनका अपना एक विशिष्ट स्थान है। सामाजिक समता, भारतीय संस्कृति के प्रति अनुराग और संसार की नश्वरता

के प्रति आस्था इनकी रचनाओं में अनुप्राणित है। सामाजिक कुरीतियों तथा सामाजिक व्यवस्था के प्रति भी आपका आक्रोश निबन्धों में स्पष्ट झलकता है। आदर्श चरित्र और आदर्श नागरिक इनकी साहित्य-सर्जना का मूल लक्ष्य है।

रचनाएँ—डॉ० प्रसाद ने मुख्यतया बाल-साहित्य की रचना की है, परन्तु प्रौढ़ साहित्य भी लिखा है। प्रौढ़ साहित्य दो प्रकार का है—व्यक्तिव्यंजक ललित निबन्ध और व्यंग्यात्मक निबन्ध। बाल साहित्य में 'मेरा साथी घोड़ा', 'फूलों के गीत' और 'खिड़की से सूरज' इनकी पुरस्कृत रचनाएँ हैं। इनकी रचनाएँ निम्नलिखित हैं—

(क) बाल-साहित्य सम्बन्धी—(१) चिड़ियाघर की सैर, (२) मेरा साथी घोड़ा, (३) फूलों के गीत, (४) झिलमिल सितारे, (५) रेल की सीटी, (६) खिड़की से सूरज आदि।

(ख) प्रौढ़-साहित्य सम्बन्धी ललित एवं व्यंग्य निबन्ध—'पतझड़-सन्देश,' 'श्रीणि शिक्षेत् गर्दभात्', 'रिकार्ड निकाह का', 'बादलों की छाँव तले', 'कंचनमृग', 'कवि', 'मैं तुलसीदास हूँ', 'वी० आई० पी० वाद', 'साहित्य-संगीतकलाविहीन:', 'दिन बहुरे' आदि।

भाषा-शैली—डॉ० श्रीप्रसाद की शैली वर्णनात्मक एवं भावात्मक तर्क-प्रधान है। नीरस विषय को भी सरस रूप में प्रगट कर देने की अद्भुत क्षमता है। आपकी भाषा शुद्ध तत्सम हिन्दी है, फिर भी संस्कृत, अरबी, फारसी, उर्दू और अंग्रेजी भाषा के लोकप्रचलित शब्दों को उदारता से अपनाया है।

बादलों की छाँव तले (पाठ-सारांश)—डॉ० श्रीप्रसाद द्वारा लिखित 'बादलों की छाँव तले' सहज प्रकृति के प्रति मानव-प्रेम की अभिव्यक्ति है। मानव आदिम युग से ही प्रकृति का प्रेमी रहा है, परन्तु धीरे-धीरे उसकी यह प्रवृत्ति कम होती गयी। लेकिन मानव अपने को पूर्णतया प्रकृति से दूर नहीं रखना चाहता। क्योंकि उसका सहचर्य सम्बन्ध केवल उपयोग के स्तर पर ही नहीं अपितु आनन्द और अनुभूति के स्तर पर भी प्रकृति के साथ बना हुआ है। यही कारण है कि ग्रामीणों की अपेक्षा शहरी लोग अवसर मिलते ही पिकनिक, पहाड़ों की सैर, पर्यटन आदि के बहाने प्रकृति की ओर भागते हैं। भारतवर्ष आज भी प्रकृति पर निर्भर है। उसके गाँव आज भी पूरी तरह प्रकृति से जुड़े हैं।

प्रारम्भिक युग से ही प्रकृति पुरुष की सहयोगिनी बनी हुई है और मानव उसका उपभोग करता चला आ रहा है। मानव में प्रकृति के रूप में आदिम संस्कारों का रक्त अब भी प्रवहमान है। मानव विकास-क्रम में ग्राम से शहर पहुँच तो गया परन्तु उसका प्रकृतिप्रेम कम न हुआ। दीवारों पर बेल-बूटे बनवाना, दरवाजे पर फूल-पत्तियों की नक्काशी, कमरे में प्राकृतिक दृश्यों के चित्र सजाना, गमलों में लताओं को आरोपित करना आदि उसके प्रकृतिप्रेम के परिचायक हैं। इस प्रकार मानव प्रकृति से अपना सान्निध्य तो बनाये हुए हैं लेकिन धीरे-धीरे अनजाने ही वह प्रकृति से दूर होता जा रहा है। उसका प्रकृति-प्रेम पहले जैसा नहीं रहा। विश्व के कुछ देश तो प्रकृति से बहुत दूर जा चुके हैं परन्तु भारतवर्ष प्रकृति-सम्पदा से परिपूर्ण होने के कारण पूर्णतः प्रकृति से दूर नहीं हो सका। यहाँ के साहित्य में प्राकृतिक सौन्दर्य का जो सूक्ष्म वर्णन है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।

प्रकृति से दूर हटने का यह सिलसिला आज से दो हजार वर्ष बाद मानव को कहाँ पहुँचा देगा, लेखक इसकी कल्पना भी नहीं कर सकता। लेखक का कहना है कि मानव-विचारों में परावर्तन भी होता रहता है और हो सकता है कि वह पुनः लौटकर प्रकृति से पूर्ववत् जुड़ जाय। आज के इस वैज्ञानिक युग ने सौन्दर्य की दृष्टि और दिशा दोनों को बदल दिया है। नदियों से निकली नहरें और उन पर बने बाँध सौन्दर्य के नये आयाम बन गये हैं।

प्रकृति ने न केवल मानव-जीवन को, अपितु काव्य और कला के साथ दर्शन को भी बहुत अधिक प्रभावित किया है। नीति और उपदेश का माध्यम भी प्रकृति को अनेक स्थलों पर बनाया गया है। यथा—

'बूँद अघात सहैं गिरि कैसे। खल के बचन सन्त सह जैसे।'

अन्त में लेखक ने 'शेली' के कथन को उद्धृत करते हुए कहा है कि मनुष्य बड़ा भाग्यशाली है जो उसे प्रकृति का वरदान प्राप्त है। बादलों की शीतल छाया भी मानव को प्रकृति का वरदान है। बादल मानव के सहचर भी हैं और सेवक भी, जो जल देते हैं और छाया से हृदय में आनन्द भर देते हैं।

(५८) **प्रश्न**—अधोलिखित गद्यांशों की अपनी पाठ्य-पुस्तक के आधार पर ससन्दर्भ व्याख्या प्रस्तुत कीजिए।

(क) मानव और प्रकृति........प्रकट करेगा।

(ख) सम्पूर्ण सृष्टि में दो ही........निछावर कर देती है।

(ग) हमें निराशा के बजाय······आह्लादित करते हैं।

(घ) ऐसे महिमामयी······सबसे बड़ा है।

(क) मानव और प्रकृति······प्रकट करेगा।

सन्दर्भ—प्रस्तुत गद्य-खण्ड पाठ्य-पुस्तक 'निबन्धायन' में संकलित निबन्ध 'बादलों की छाँव तले' शीर्षक से उद्धृत है। इस निबन्ध के लेखक विख्यात बाल-साहित्यकार डॉ० श्रीप्रसादजी हैं। इन पंक्तियों में लेखक ने मानव एवं प्रकृति के पारस्परिक सम्बन्धों का विश्लेषण किया है।

व्याख्या—लेखक का कहना है कि मानव और प्रकृति का साहचर्य सम्बन्ध उपयोग के आधार पर होने के साथ ही साथ आनन्द और अनुभूति के धरातल पर भी है। उपयोग की दशाओं में सदा परिवर्तन होते रहते हैं। यदि मानव का प्रकृति से मात्र उपयोग तक ही सम्बन्ध होता तो उपयोग की समाप्ति पर यह सम्बन्ध भी समाप्त हो गया होता। मनुष्य प्रकृति द्वारा प्राप्त उपयोगों का विकल्प ढूंढ़कर प्रकृति को अपने से दूर कर चुका होता। परन्तु स्थिति ठीक इसके विपरीत है। आज भी मनुष्य चाहे जिस स्थान एवं वातावरण में हो, शहर अथवा गाँव में हो, उसका प्रकृति से प्रेम कम नहीं हुआ है। वह अपना प्रकृति-प्रेम किसी-न-किसी रूप में अवश्य प्रकट करेगा ही।

(ख) सम्पूर्ण सृष्टि के दो ही······निछावर कर देती है।

सन्दर्भ—पूर्ववत्।

व्याख्या—लेखक का कहना है कि विधाता की रचना (सृष्टि) मूलरूप में प्रकृति और पुरुष दो ही रूप में दृश्यमान है। प्रश्न यह नहीं कि विधाता ने सर्वप्रथम किसे बनाया, अपितु इतना निश्चित है कि दोनों का साहचर्य सम्बन्ध प्रारम्भ से ही प्रगाढ़ रहा है। प्रकृति सदा से पुरुष की सहयोगिनी रही है और पुरुष सदा से इसका उपभोक्ता। प्रकृति के द्वारा ही मनुष्य आनन्द का अनुभव करता आया है एवं इसके द्वारा वह विभिन्न उपयोगी वस्तुओं को प्राप्त करता चला आ रहा है। प्रकृति भी उदार भाव से अपना सर्वस्व मुक्त भाव से पुरुष को समर्पण करती रही है। प्रकृति उस सहचरी नारी की भाँति है जो अपना सब कुछ अपने प्रियतम को खुशी-खुशी समर्पित कर देती है।

(ग) हमें निराशा के बजाय··· ···आह्लादित करते हैं।

सन्दर्भ—पूर्ववत्।

व्याख्या—लेखक के विचार से मानव को प्रकृति से निराश न होकर आनन्द का ही अनुभव करना चाहिए और उसके अधिकाधिक उपभोग के लिए आगे भी आशा बनाये रखनी चाहिए। इतने दिनों तक उपभोग के बाद भी प्रकृति के आनन्द का अक्षय भण्डार अब भी कम नहीं हुआ है। बादल हमारे लिए अब भी पानी लाते हैं, नदियाँ अपने विस्तार से धरती को सींचने के के साथ हमारे मन को भी सींचती हैं। इससे धरती तो हरी-भरी होती ही हैं, हमारा मन भी हरा-भरा हो जाता है। इसी प्रकार प्रकृति के अंग पर्वत अब भी बर्फ की पगड़ी सिर पर बांधे सूरज की किरणों से दीपित हो प्रफुल्लित हो अपना जल नदियों को समर्पित कर रहे हैं। इनका दर्शन मनुष्य के मन को आह्लादित करता रहता है। अपनी सुन्दरता, अपनी हरीतिमा से वे मनुष्य को आनन्द लूटने को आमन्त्रित करते हैं।

(घ) ऐसे महिमामयी ··· ···सबसे बड़ा है।

सन्दर्भ—पूर्ववत्।

व्याख्या—लेखक का कहना है कि इतनी अधिक महिमामयी सौन्दर्य-शालिनी उदारमना प्रकृति का वरदान प्राप्त कर लेना मानव की बहुत बड़ी उपलब्धि मानी जाती है, जो परोक्षरूप से मनुष्य की सर्वोच्च सत्ता को प्रकट करती है। अनन्त प्रकृति ने अपने ऊपर शासन करने का अधिकार मानव (पुरुष) को स्वेच्छया समर्पित किया है तथा मानव-जीवन में होने वाले परिवर्तन भी प्रकृति के अनुरूप ही होते हैं। जैसे प्रकृति में समयचक्र के अनुसार वर्षा, शरद्, वसन्त आदि ऋतुओं का परिवर्तन होता रहता है उसी प्रकार मानव-जीवन में भी सुख-दुःख का चक्र चंक्रमण करता रहता है। पाश्चात्य विद्वान् शेली का कथन इस बात की पुष्टि करता है। उसने कहा है—'यदि शरद् ऋतु आयी है तो वसन्त ऋतु भी आयेगी ही।' प्रकृति का मानव के लिए केवल सौन्दर्यशालिनी नारी ही नहीं अपितु कान्तासम्मित उपदेशकर्त्री गुरु भी है। मनुष्य का यह सबसे बड़ा सौभाग्य है कि उसे प्रकृति का यह वरदान प्राप्त है। फूलों की मुस्कान, पंछियों का गुञ्जन, नदियों का कल-कल रव, सूरज और चाँद-सितारों की जगमगाहट, यह सब कुछ मनुष्य के आनन्द के लिए ही हैं। मनुष्य सृष्टि का सर्वोत्तम प्राणी है।

कथा-प्रवाह

(पाठ-सारांश)

(१) परीक्षा

पाठ-सारांश—मुंशी प्रेमचन्द की कहानी 'परीक्षा' मनुष्य के अन्दर की योग्यता, दया, करुणा, कर्त्तव्यनिष्ठा और सच्चाई के आधार पर आँकती है। वह लम्बी डिग्रियों और उच्च शिक्षा या कुलीनता को योग्यता का आधार नहीं मानते। यह बात उनकी कहानी 'परीक्षा' से स्पष्ट हो जाती है।

रियासत देवगढ़ के दीवान सुजानसिंह अपनी वृद्धावस्था के कारण अपने पद से जब हटने की इच्छा प्रकट करते हैं तो महाराज ने उन्हें अपने जैसा एक योग्य व्यक्ति नियुक्त करने का आदेश दे दिया। दूसरे दिन समाचारपत्रों में एक विज्ञापन निकला कि देवगढ़ रियासत के लिए एक योग्य दीवान की आवश्यकता है। अपने को इस पद के योग्य समझने वाले व्यक्ति वर्तमान दीवान सुजानसिंह से सम्पर्क करें। विद्या का कम किन्तु कर्त्तव्य पर अधिक विचार होगा एवं उनके रहन-सहन तथा आचार-विचार की एक महीने तक परीक्षा ली जायेगी, तभी कोई निर्णय हो सकेगा।

इस विज्ञापन के पश्चात् देवगढ़ में दीवान पद के लिए प्रत्याशियों का मेला लग गया। स्नातक, पण्डित और मौलवी, सभी प्रत्याशी बन कर आये थे। सभी बेसब्री से महीना बीतने का इन्तजार कर रहे थे। सबके खाने-पीने और रहने का प्रबन्ध रियासत की ओर से किया गया था। परीक्षा के अन्तिम दिनों में नये फैशन के लोगों ने आपस में हाकी का मैच मनोरञ्जन हेतु आयोजित किया। एक बड़े मैदान में फील्ड बना कर खेल प्रारम्भ हुआ। शाम तक बड़े धूमधाम से मैच चलता रहा, परन्तु हार-जीत का फैसला न हो सका। खिलाड़ी थक कर आराम करने लगे। मैदान के बगल में ही एक गहरा नाला बहता था, जिस पर कोई पुल न था। एक किसान अनाज से भरी बैलगाड़ी लेकर इसी नाले में फँस गया। नाले में कीचड़ अधिक था और बैल भी कमजोर थे, अतः वह उस पार जाने में असमर्थ हो रहा था। उसे वहाँ कोई

सहायक भी नहीं दिखाई दे रहा था। इसी बीच सूर्यास्त जान खिलाड़ी लोग हाथ में हाकी का डण्डा लिये उधर से गुजरने लगे। किसान ने उन्हें सहायता के लिए पुकारा, पर वे उस पर अपनी उपेक्षाभरी नजरें डालते हुए आगे बढ़ गये।

इन खिलाड़ियों में एक दयावान् एवं साहसी व्यक्ति भी था, जो पैरों में चोट लगने के कारण लँगड़ाता हुआ धीरे-धीरे सबसे पीछे चला आ रहा था। उसकी निगाह किसान पर पड़ी तो वह अपना दर्द भूल झटपट किसान की सहायता में जुट गया। युवक ने पहियों पर अपना जोर लगाया और किसान ने बैलों को ललकारा तो थोड़ी-सी मेहनत के बाद ही गाड़ी नाले के ऊपर आ गयी। किसान ने हाथ जोड़कर युवक का धन्यवाद करते हुए कहा कि यदि आप न आते तो मुझे सारी रात इसी वीराने में बितानी पड़ती। आपने मेरा बहुत बड़ा उपकार किया। युवक ने जब इनाम देने की बात कही तो वृद्ध किसान ने कहा कि यदि ईश्वर ने चाहा तो देवगढ़ की दीवानी का पद आपको ही मिलेगा।

युवक के मन में सन्देह हुआ कि कहीं यह किसान वेषधारी व्यक्ति दीवान सुजानसिंह तो नहीं। किसान युवक के सन्देह को समझते हुए हँसते हुए बोला कि गहरे पानी में जाने से ही मोती मिलते हैं। धीरे-धीरे महीना पूरा हुआ और सभी प्रत्याशी दीवान सुजानसिंह का फैसला सुनने को आतुर थे।

दूसरे दिन सायंकाल राजा साहब देवगढ़ का दरबार सजाया गया। शहर के रईस, धनाढ्य, कर्मचारी, दरबारी एवं सभी उम्मीदवार दरबार में उपस्थित हुए। सरदार सुजानसिंह ने अपना फैसला सुनाते हुए कहा कि रियासत देवगढ़ को एक दयावान्, साहसी एवं आपत्तियों का वीरता से सामना करने वाले पुरुष की आवश्यकता थी। सौभाग्य से हमें ऐसा पुरुष मिल गया है। मैं रियासत को पण्डित जानकीनाथ जैसा दीवान पाने पर बधाई देता हूँ एवं आप सबको जो कष्ट हुआ, उसके लिए क्षमा चाहता हूँ।

दीवान साहब ने फिर कहा कि आप सबको यह मानने में कोई आपत्ति न होगी कि जो पुरुष स्वयं जख्मी होकर भी एक किसान की भारी गाड़ी को सहारा देकर कीचड़ से निकाल कर नाले के ऊपर चढ़ाने में सहारा दे, उसमें साहस, आत्मबल एवं उदारता का निवास है। ऐसा व्यक्ति गरीबों को कभी नहीं सतायेगा एवं अपने दृढ़संकल्प से चित्त को सदा स्थिर रखेगा। वह भले ही

धोखा खा जाये पर दूसरों को धोखा नहीं देगा। वह दया एवं धर्म से कभी पीछे नहीं हटेगा। देवगढ़ को ऐसे ही दीवान की आवश्यकता थी। इससे हमें यह शिक्षा मिलती है कि हर परिस्थिति में मनुष्य को दया एवं धर्म का पल्ला नहीं छोड़ना चाहिए।

(२) मुगलों ने सल्तनत बख्श दी

पाठ-सारांश—'मुगलों ने सल्तनत बख्श दी' कहानी भगवतीचरण वर्मा की एक व्यंग्य-प्रधान कहानी है, जो इतिहास व पुराण की कथाओं को झुठलाती हुयी एक नयी काल्पनिक कहानी प्रस्तुत करती है। कहानी का नायक 'हीरोजी' एक ऐसा शराबी व नशेबाज व्यक्ति है जो गप्पें हाँकना और दूसरों से माँग कर नशा या चाय आदि पीना ही जानता है। वह लोगों का मनोरञ्जन करता है। शराब, चरस, भाँग आदि भरपेट पीता है। एक बार एक व्यक्ति ने तंग आकर उसे संखिया नामक महाविष दे दिया कि संसार एक पापी से मुक्त हो जाय। पर हीरोजी उस महाविष को भी पचा गया और दूसरे दिन पुनः वही नशा माँगने उस व्यक्ति के पास जा पहुँचा। वह व्यक्ति अपने किये पर बहुत लज्जित हुआ और वह संखिया न होने का बहाना कर गया।

एक दिन हीरोजी एक चाय की दुकान पर पहुँचा। वहाँ बैठे लोगों में इस बात पर बहस हो रही थी कि इस कलियुग में पहले जैसे वचन का पालन करने वाले सत्यवादी नहीं रहे। सभी लोग बेइमान हो गये हैं। वचन-पालन तो दूर लिखकर भी मुकर जाते हैं, पर एक जमाना था जब दानवराज बलि ने वचनबद्ध होकर सम्पूर्ण पृथ्वी के साथ अपना शरीर भी हँसने-हँसते दान कर दिया था। हीरोजी ने बात काटते हुए कहा—अरे! त्रेता में तो केवल बलि ने ऐसा किया था पर कलियुग में एक आदमी के दिये वचन को उसकी आगे की सात पीढ़ियों ने निभाया। वह पीढ़ी स्वयं नष्ट हो गयी पर उसने अपने पूर्वजों का दिया हुआ वचन न तोड़ा। यह सुनकर सभी आश्चर्य में पड़ गये और एक नयी कहानी सुनने के लोभ से हीरोजी के आसपास एकत्रित हो गये। हीरोजी ने लोगों से पूछा कि मुगल साम्राज्य का अन्त कैसे हुआ? उन्होंने इतिहास को गलत बताते हुए कहा कि मुगलों ने अपनी सल्तनत स्वेच्छा से अंग्रेजों को सौंप दी। हीरोजी ने कहना शुरू किया—

बात उन दिनों की है जब दिल्ली की गद्दी पर मुगलसम्राट् शाहजहाँ

तख्तनशीन था। उसकी लड़की बीमार पड़ी। उसका हाथ लैम्प से जल गया था। जला क्या जरा-सी आंच लग गयी थी। राजकुमारी को दवा करने बड़े-बड़े हकीम आये पर बादशाहजादी रोशनआरा की पीड़ा खत्म न हुई। उसी समय एक चालाक व मक्कार अँग्रेज आया। उसने पहले ही पता लगा लिया कि शाहजादी का हाथ क्यों नहीं अच्छा होता। उसे मालूम हुआ कि शाहजादी दवा लगाने के बाद तुरन्त हाथ धुलवा देती है जिससे दवा का कोई असर नहीं होता। उस अँग्रेज ने एक तरकीब सोची और हाथ को अच्छा कर देने का बीड़ा उठाया। उसने घाव पर दवा की जगह वैसलीन लगाना शुरू कर दिया। इससे शहजादी को ठण्डक महसूस हुई और वह हाथ धुलवाना बन्द कर दी। परिणामतः रोग जल्द ही समाप्त हो गया। शाहजहाँ ने जब प्रसन्न होकर उससे ईनाम माँगने को कहा तो उसने उस दवा का हिन्दुस्तान में प्रचार करने हेतु जगह माँग ली। उसने बादशाह से मात्र एक तम्बू पर जगह माँगी और बादशाह ने उस तम्बू में आने वाली समस्त भूमि उसे बख्श दी।

कुछ दिनों बाद वह व्यापारी कलकत्ता में उतरा और अपने साथ रबर का बना मजबूत तम्बू लाया। तम्बू का रंग आसमान जैसा नीला था। उसकी विशेषता थी कि उसे जितना बढ़ाया जाय बढ़ता जाता था। उस मक्कार अँग्रेज ने दवा के पीपों में अस्त्र-शस्त्रों से लैस गोरे सैनिक उतारे और उस तम्बू के नीचे एकत्र किये। सैनिकों की संख्या के साथ ही वह अपना तम्बू भी आगे बढ़ाता गया। वह तम्बू बढ़ते-बढ़ते प्लासी आ पहुँचा। हरकारा बादशाह को खबर करने दिल्ली को दौड़ा। उसकी खबर सुनकर बादशाह ने अपनी लाचारी बताते हुए कहा कि हम अपने खानदानी उसूल को नहीं तोड़ सकते। हमारे पुरखों ने उन्हें उस तम्बू के नीचे आने वाली जगह बख्श दी है। एक दिन तम्बू बढ़ता हुआ बक्सर आ पहुँचा तो हरकारा फिर बादशाह के पास पहुँचा। बादशाह उस समय रंगीन महफिल में बैठा था। उसने कहा—मैं कर ही क्या सकता हूँ? हमारे बुजुर्ग उन्हें उतनी जमीन दे गये हैं। तम्बू का बढ़ना जारी रहा और वाराणसी होते हुए दिल्ली के समीप पहुँच गया। बादशाह को सूचना मिली तो उसने कहा—हम अमीर तैमूर की औलाद है। हमारे बुजुर्गों ने जो कह दिया वह होगा। उन्होंने तम्बू के नीचे की जगह फिरंगियों को बख्श दी थी। अब दिल्ली भी उस तम्बू के नीचे आती है तो आ जाय।

मुगल सल्तनत जा रही है तो जाय, हम उससे मुकर नहीं सकते। दुनिया यह देख ले कि अमीर तैमूर की औलाद अपनी कौल की पक्की रही है।

इस प्रकार कलियुग में मुगलों ने सल्तनत बख्श दी पर अपना कौल नहीं तोड़ा। हीरोजी की कहानी खत्म हुई तो बात हीरोजी के व्यक्तित्व पर आ गयी। लोगों ने हीरोजी से एक प्याला चाय और पीने का आग्रह किया तो वे बोले कि इतनी सुन्दर कहानी के बदले सिर्फ एक प्याला चाय! अरे कम से कम महुवे के ठर्रे का अद्धा तो पिला ही दीजिए।

(३) देशभक्त

पाठ-सारांश—प्रस्तुत कहानी देशभक्त बेचन शर्मा 'उग्र' द्वारा लिखित एक उत्कृष्ट देशभक्त और सत्ताधारी के लोगों के भ्रष्टाचार की कहानी है। कहानी को पौराणिक रूप दिया गया है। कथा इस प्रकार है—

एक दिन ब्रह्माणी (ब्रह्मा की पत्नी) ने ब्रह्मा से कहा कि मृत्युलोक में आपकी सृष्टि में कोई मौलिकता नहीं रह गयी है, सब पुराना हो गया है। कोई रोता है, कोई हँसता है एवं राजा रंक बन जाता है, रंक राजा बन जाता है। इन बातों में कोई मौलिकता नहीं रह गयी है। अतः कोई ऐसी नयी रचना कीजिए जिस पर गर्व किया जा सके।

ब्रह्मा ने ब्रह्माणी के सामने ही सामग्री मँगवा कर उसकी सहायता से पंचतत्त्वों का एक पुतला बनाया एवं तेज, दया, सौन्दर्य, करुणा, प्रेम, विद्या, बुद्धि, बल आदि सद्गुणों से उसे सजाने के बाद उसके भाग्य में चिन्ता, दरिद्रता एवं दुःख के साथ आयु २० वर्ष मात्र लिख दिया। यह देखकर ब्रह्माणी ने पूछा—आपने यह क्या किया? इतने गुणों के साथ दरिद्रता, दुःख एवं चिन्ता जैसे दुर्गुणों की क्या जरूरत है? ब्रह्मा ने चुपचाप तमाशा देखने को कहा। उसका नाम पूछने पर ब्रह्मा ने उसका नाम देशभक्त कहा।

जब देशभक्त की अवस्था १९ वर्ष की हुई तो अमरावती से इन्द्र ने, कैलास से शंकर ने और वैकुण्ठ से भगवान् विष्णु ने उसे देखा और आशीर्वाद दिया। एक दिन देशभक्त किसी देशद्रोही का पीछा हाथ में पिस्तौल लिए कर रहा था। यह देख वैकुण्ठ में लक्ष्मी ने विष्णु से घबराकर पूछा कि मुख पर अद्भुत तेजवाला, पवित्र आचरण वाला इस प्रकार राक्षसी कर्म में उद्यत यह युवक कौन है? यह कैसी विचित्र लीला है? विष्णु ने लक्ष्मी को समझाया कि

वह चुपचाप तमाशा देखती जाय। यह विधाता की पवित्र कृति है। इसे हे देवि ! प्रणाम करो।

उधर देशद्रोही के मस्तक पर पिस्तौल तान कर देशभक्त ने कहा—या तो मातृभूमि-सेवा की प्रतिज्ञा कर अथवा मरने को तैयार हो जा। देशद्रोही ने घमण्ड से कहा कि वह सम्राट् का लड़का है। सम्राट् के सामने देश की बड़ाई नहीं करते। पुनः देशभक्त द्वारा भारत माता की जय बोलने पर विवश किये जाने पर देशद्रोही ने सीटी बजाकर अपने अन्य साथियों को भी बुला लिया। देशभक्त देशद्रोहियों द्वारा घिर गया। देशभक्त ने भारत माता की जय बोलकर देशद्रोही पर गोली चला दी। वह वहीं ढेर हो गया। इसके पश्चात् उसके अन्य सहयोगियों द्वारा वह पकड़ लिया गया। परन्तु तब भी उसके मुख से भारत माता की जय की ध्वनि मुखरित होती रही। सिपाहियों ने उसे कारागार में डाल दिया।

ब्रह्मा ने ब्रह्माणी से कहा—देखो, यह हमारी कृति है। जिसके चरण-स्पर्श से कारागार अपने को स्वर्ग समझ रहा है। लोहे की हथकड़ी इसके हाथों में सोने के कंगन-सी अनुभव कर रही है एवं परम प्रसन्न है। प्रिये ! मंगल मनाओ, आज मेरी कृति धन्य हुई।

देशभक्त पर मुकदमा चला और उसे तोप से उड़ा देने की सजा हुई। उसे तोप के मुँह के सामने खड़ा कर अन्तिम बार कहा गया कि वह सम्राट् की जय बोले तो उसे क्षमा किया जा सकता है। देशभक्त ने दृढ़तापूर्वक उत्तर दिया—तुम अपना कार्य करो, मुझसे पश्चात्ताप की आशा करना व्यर्थ है, क्योंकि वह सच्चा सम्राट् नहीं है। मैं चोर-लुटेरों के सरदार को सम्राट् नहीं मान सकता। तुम्हारे सम्राट् का भला इसी में है कि वह मुझे तोप से उड़वा दे, इसी से एक न एक दिन इसके पापों का घड़ा फूटेगा ही और इसे अपने पापों से मुक्ति मिल जायेगी। इसके पश्चात् सम्राट् के समर्थकों ने देशभक्त को तोप से उड़ा दिया। उसके शरीर के एक-एक कण को देवताओं ने मणि की तरह लूट लिया और समस्त देवलोक में देशभक्त की जय का निनाद गूँज उठा।

इस कहानी का मुख्य उद्देश्य परोपकारी देशभक्त के सच्चरित्र को निरूपित करना है, जिसमें कहानीकार सफल है। देश की सेवा करने वाले व्यक्ति में विधाता ऐसे ही गुण भरता है और उन्हें शुभ काम करने का एक ही मौका

देता है। उनके भाग्य में दरिद्रता, चिन्ता और क्लेश ही लिखा रहता है। मातृभूमि की सेवा में हँसते हुए प्राण दे देना ही देशभक्त का काम है।

(४) मिठाईवाला

पाठ-सारांश—प्रस्तुत कहानी 'मिठाई वाला' भगवतीप्रसाद वाजपेयी की मनोवैज्ञानिक कहानी है। कहानी का नायक एक ऐसा व्यक्ति है जो दुर्भाग्य से अपना परिवार खो बैठा है। वह इस दुःख को भुलाने के लिए देशभर के छोटे बच्चों को अपना बच्चा समझता हुआ उन्हीं में अपने दो छोटे बच्चों को खोजता हुआ उन्हीं के लिए तरह-तरह के सामान बेचता घूमता रहता है। कहानी का सारांश इस प्रकार है—

एक खिलौने बेचने वाला व्यापारी गलियों में घूम-घूम कर अपनी मधुर वाणी से लड़कों को बहलाने वाला, खिलौने वाला 'खिलौने ले लो' यह अधूरा गीत गाता हुआ घूमता है। बच्चे उसका अधूरा गीत सुनते ही अपना काम छोड़कर घरों से बाहर निकल आते हैं और उसे चारों ओर से घेर लेते हैं। वह वहीं बैठकर अपने खिलौने की पेटी खोल देता है और सबको उनके मन-पसन्द खिलौने पैसे लेकर देता जाता है। जिसके पास पैसे नहीं होते उन्हें वह प्यार से माँ-बाप से पैसे माँगने का तरीका भी बताता है। गरीब बच्चों को वह यों ही खिलौने दे देता है। किसी बच्चे को निराश नहीं करता। इस प्रकार सबको खुश कर स्वयं गीत गाता हुआ अगली गली की ओर बढ़ जाता है।

राय विजयबहादुर के बच्चे चुन्नू और मुन्नू भी खिलौने लेकर घर आये और अपने-अपने खिलौनों की प्रशंसा करने लगे। उनकी माँ रोहिणी ने पूछा कि ये खिलौने कितने पैसे में लिये तो वे तुतली बोली में बोले—'ये दो-दो पैसे के हैं'। रोहिणी इतना ही सोचकर रह गयी कि पता नहीं वह इतना सस्ता कैसे दे गया। फिर वह अपने काम में लग जाती है और इस घटना को भूल जाती है।

छः महीने बाद फिर गली में वैसा ही मधुर गीत सुनने को मिला। एक मुरली वाला गली में 'बच्चों को बहलाने वाला, मुरलिया वाला, मुरली ले लो' का गीत मधुर स्वरों में गा रहा था। रोहिणी ने अपने पति को बच्चों के लिए मुरली ले देने को कहा। उन्होंने आवाज देकर उसे बुलाया और मुरली

की कीमत पूछी। इतने में बहुत से बच्चों ने आकर उसे घेर लिया। मुरली के लिए बेताब बच्चों को प्यार से समझाते हुए कहा—रुको भैया, सबको दूँगा। मेरे पास एक नहीं सत्तावन मुरली हैं। फिर विजय बाबू को उसका मूल्य बताते हुए बोला—वैसे तो ३ पैसे में एक बेचता हूँ, पर आपको २ पैसे में ही दे दूंगा। थोड़ी देर मोल-तोल के पश्चात् दो मुरली लेकर अन्दर आये और वह सभी बच्चों को बारी-बारी से मुरली देता रहा। सबको मुरली देने के बाद वह उसी तरह गीत गाता हुआ आगे बढ़ गया।

आठ महीने बाद फिर नगर की गलियों में 'बच्चों को बहलाने वाला, मिठाई वाला मिठाई ले लो' का गीत सुनायी दिया। रोहिणी चिर-परिचित आवाज सुन कर दादी (अपनी बूढ़ी सास) को उसे बुलाने को कहा। दादी के बुलाने पर वह आया और अपनी मिठाई की प्रशंसा करता हुआ बोला—इसका मूल्य एक पैसे में सोलह है। रोहिणी के कहने पर दादी ने चार पैसे की मिठाई ले ली। रोहिणी ने पर्दे के पीछे से ही दादी से कहा—इससे पूछो कि क्या इसके पहले भी इस शहर में आया है। दादी के पूछने पर इसने बताया कि वह इस शहर में पहली बार नहीं, कई बार आया है; पहले खिलौने लेकर, फिर मुरली लेकर और अब मिठाई लेकर।

रोहिणी ने जब यह पूछा कि इतना सस्ता बेचने पर आपको क्या मिलता है तो उसने कहा कि खाने भर को तो मिल ही जाता है, न भी मिले तो भी कोई बात नहीं, सन्तोष, धैर्य और आत्मसुख तो मिलता ही है। बातों ही बातों में उसने अपना अतीत बताते हुए कहा कि वह भी नगर का एक प्रतिष्ठित व्यक्ति था। उसके परिवार में एक सुन्दर पत्नी एवं उसके दो छोटे-छोटे प्यारे बच्चे थे। दैवयोग से इस समय कोई नहीं है। उन्हीं की याद में परेशान होकर वह गलियों में कुछ-न-कुछ बेचता हुआ, बच्चों को देख-देख कर सुख व सन्तोष अनुभव करता है; यही उसका सबसे बड़ा लाभ है।

रोहिणी ने देखा, बातें करते-करते मिठाई वाले की आँखें नम हो आयीं। उसी समय गली के बच्चे आ गये और सबको मिठाई देकर बिना पैसे लिये ही वह अपना गीत गाता-हुआ आगे बढ़ गया।

(५) पढ़ाई

पाठ-सारांश—प्रस्तुत कहानी 'पढ़ाई' हिन्दी के जाने-माने मनोवैज्ञानिक कथाकार जैनेन्द्र की कृति है। उन्होंने इस कहानी के माध्यम से बाल-सुलभ

चापल्य और माँ-बाप को उनके भविष्य की चिन्ता का निरूपण किया गया है। हर माँ-बाप की इच्छा होती है कि उनके बच्चे योग्य बनें, पर बच्चे अपना अधिक समय खेलने में बिताना चाहते हैं। बच्चों को डाँट-फटकार कर नहीं प्यार से ही सुधारा जा सकता है। कथा-सार इस प्रकार है—

एक चार सदस्यों का सुखी परिवार जिसमें पति-पत्नी, छोटी सुनयना जिसे प्यार से सब 'सुन्नी' कहते हैं और उसकी बुआ। घर में बुआ ही सुनयना को सबसे अधिक प्यार करती है। माँ भी प्यार करती है पर वह उसे पढ़ी-लिखी योग्य नारी बनाना चाहती है। इसलिए उसे हरदम पढ़ाई करने को डाँटती रहती है। उसे उसके विवाह की भी चिन्ता लगी रहती है। अब वह छः वर्षों की हो गयी है। कुछ ही दिनों में ब्याह के योग्य हो जायेगी तब वह लड़के वालों के यह पूछने पर कि लड़की कितनी पढ़ी-लिखी है, क्या कहेगी। वह अक्सर अपने पति से भी कहा करती कि लड़की पढ़ने में मन नहीं लगाती, खेल में अपना ज्यादा समय बिता देती है। ननद (बुआ) से भी कहती, पर दोनों ही—अभी बच्ची है, कहकर टाल जाते। सुन्नी माँ के डाँटने-फटकारने पर बुआ की गोद में चली जाती, पर माँ उसे बुआ की गोद से खींच लाती और पढ़ने के लिए डाँटती-फटकारती। बुआ के प्रतिरोध पर कहती—'बुआ, मैं इसकी माँ हूँ, यह मेरी ही पुत्री है। मैं भी इससे आप जितना ही प्यार करती हूँ। किन्तु संसार में पढ़ाई की भी आवश्यकता है। कल जब इसका ब्याह का वक्त आयेगा तो लड़के वाले इसकी पढ़ाई-लिखाई के बारे में पूछेंगे तो क्या ज़वाब दिया जायेगा। क्या यह कहा जायेगा कि लड़की बड़े दुलार में पली है। नहीं तब तो यही कहना होगा कि लड़की ने खूब काम सीखा है, वह खूब पढ़ी-लिखी है। उसने अमुक कक्षा पास की है'।

माँ ने एक दिन अपने पति से भी अपनी चिन्ता बता दी। उसने उलाहना देते हुए कहा कि तुम ध्यान देते हो और लड़की खेलने में ही अपना समय बिता देती है। इस प्रकार तो वह अनपढ़ रह जायेगी। पति ने जब यह पूछा कि तुम क्या चाहती हो तो उसने बच्ची को स्कूल न भेजकर घर पर ही पढ़ाने हेतु ट्यूटर रखने का सुझाव दिया। इस पर पति ने कहा—ठीक है, मैं ही घण्टा भर उसे पढ़ा दिया करूँगा। पत्नी खुश हो गयी।

फिर एक दिन प्रातः ही माँ की गरज सुनायी देती है। माँ उसे दूध पिलाना चाहती है, पर वह यह कहकर कि रोज-रोज दूध पीना उसे अच्छा नहीं

लगता, दूध पीने से मना कर देती है। माँ चिल्ला कर कहती है—तुझे रोज-रोज खेलना तो अच्छा लगता है। बच्ची बुआ के पास भाग जाती है। बुआ के प्रेम से कहने पर वह दूध पीने लगती है कि तभी बाहर खेलने वाले बच्चों ने खेलने को आवाज दी। वह दूध पीना छोड़कर गली में भाग गयी। बाहर खेल शुरू हो गया।

'गोपीचन्दर भरा समन्दर।
बोल मेरी मच्छी कित्ता पानी ॥'

इसके उत्तर में गोल दायरे में 'मच्छी' बना लड़का कान छूकर कहता—'इत्ता पानी' और सभी लड़के समन्दर में डुबकी लगाने का अभिनय करते। इस प्रकार खेल चलता रहता। माँ ने नौकर भेजकर जब लड़की को बुलवाया तो वह नहीं आयी। वह स्वयं आकर गुस्से से उसे घसीटती हुयी ले गयी और एक कोठरी में बन्द कर दिया। किन्तु अधिक समय तक बन्द न रख सकी और वह प्रेम में स्वयं ही रोने लगी। रात को पति-पत्नी में लड़ाई हो गयी। पति ने कहा— जब वह एक घण्टे मुझसे पढ़ चुकी है तो तुम्हें उसके खेलने में दखल देने का कोई हक नहीं बनता। बात पर बात बढ़ती गयी और पति ने नाराज होकर उस रात को खाना नहीं खाया। पत्नी नाराज होकर मायके चली गयी। बालिका सुन्नी के मन पर इस घटना का इतना असर हुआ कि वह खेलने की अपेक्षा पढ़ने में अपना मन अधिक लगाने लगी। अब वह खूब मन लगा कर पढ़ाई करती।

कुछ दिनों बाद पत्नी जब लौटकर आयी तो पुत्री में काफी परिवर्तन आ चुका था। उसे यह देखकर आश्चर्य हुआ। अब वह खेल की बातें न करके पढ़ाई की बातें अधिक करती।

कथाकार जैनेन्द्र ने बाल-मनोविज्ञान के इस तथ्य पर अत्यधिक बल दिया है कि बच्चे प्यार के भूखे होते हैं। उन्हें नपा-तुला नहीं, असीम प्यार चाहिए। जोर-जबर्दस्ती का उन पर उतना प्रभाव नहीं होता, जितना प्यार का। प्यार उन्हें समग्र रूप में ही स्वीकार है, खण्डशः नहीं। सुन्नी के जीवन में अचानक आया परिवर्तन प्यार की कमी की प्रतिक्रिया है। जब उसे माँ-बाप के कलह से माँ के प्यार से वंचित होना पड़ा तो वह अचानक बाल सुलभ चापल्य को छोड़ गम्भीर हो गयी।

(६) चार आने

कथा-सार—प्रस्तुत कहानी 'चार आने' छोटी-सी घटना होती हुयी भी महत्त्वपूर्ण है। कथाकार यशपालजी ने इसमें जीवन में धन की महत्ता तथा आत्मसम्मान-रक्षा जैसे तत्त्वों को बारीकी के साथ उभारा है। कभी-कभी आत्मसम्मान अपना दुःख दूसरों पर प्रगट करने से रोकता है, तो कभी निर्धनता आत्मसम्मान की रक्षा में उपहासजनक बन जाती है। प्रस्तुत कहानी में 'चार आने' पैसे इसी तथ्य की ओर संकेत करते हैं। कथा-सार इस प्रकार है—

विन्दौर (इन्दौर) के महाराज को खेलों में विशेष रुचि थी, किन्तु टेनिस में उनकी रुझान कुछ ज्यादा ही थी। एक बार वे सेक्रेटरी के कहने पर टेनिस का टूर्नामिण्ट देखने जीमखाना पहुँचे। खेल की समाप्ति पर दूसरे बड़े आदमियों की तरह उन्होंने भी विजयी खिलाड़ियों से हाथ मिलाया और उन्हें सन्तोष हुआ कि उनके द्वारा यह एक उचित कार्य हुआ। इसके तीन दिन बाद सेक्रेटेरी एक अखबार लाया, जिसमें राजा साहब का चित्र छपा था तथा दो कालमों में राजा साहब की उदारता की प्रशंसा एवं विजयी खिलाड़ियों को पुरस्कार-वितरण का समाचार छपा था। चित्र में राजा साहब विजयी खिलाड़ी मिस्टर इरशाद से हाथ मिला रहे थे। तभी से राजा साहब की टेनिस के प्रति विशेष रुचि उत्पन्न हो गयी।

अब महाराज नित्य समाचारपत्र में नियमित रूप से टेनिस सम्बन्धी समाचार पढ़ते तथा उसकी बारीकियों, मुख्य शब्दों के अर्थ तथा कम्पनियों एवं खिलाड़ियों के विषय में जानकारी प्राप्त करते। मैसूर-प्रवास के दौरान वे खिलाड़ियों की पोशाक पहन कर टेनिस के मैदान में भी जाते। टूर्नामिण्टों के मुख्य अतिथि बनते। इस प्रकार वे टेनिस के संरक्षक माने जाने लगे।

पर कहानी का मुख्य पात्र इरशाद कालेज के टूर्नामिण्ट में मिले टेनिस के रैकेट से गर्व तो अनुभव करता लेकिन जीवन की आर्थिक समस्याओं से जूझ न सका। टेनिस की महारत और शोहरत उसे एक अदद नौकरी न दिला सकी। पिता के देहान्त के बाद बी० ए० पास करने के उपरान्त सारी जिम्मे-दारी अपने ऊपर ओढ़ ली। इज्जतदार घराने का होने के कारण उसका खर्च भी कुछ ज्यादा ही था। कुल के सम्मान की रक्षा में उसे अपना मकान भी

गिरवी रखना पड़ा। लोगों ने सलाह दी कि उसकी बड़े-बड़े लोगों से जान-पहचान है, क्यों न किसी से सिफारिश करा कर कोई नौकरी कर लेता।

अन्त में इरशाद ने सरकारी विभागों की अपेक्षा राजाओं के यहाँ नौकरी करना ही अच्छा समझा और महाराज विन्दोर को पत्र लिखा। राजा साहब उन दिनों मसूरी में थे। उन्होंने उसे वहीं आने का निमन्त्रण दे दिया। इरशाद कुछ कर्ज लेकर दो नयी पतलून एवं कमीजे बनवाया और एक मित्र का सूटकेस उधार माँग कर साठ रुपये जेब में डालकर मसूरी जा पहुँचा। वहाँ पहुँचने पर राजा साहब ने उसका गर्मजोशी से स्वागत किया। उपस्थित लोगों से उसका परिचय कराते हुए अति प्रशंसा भी की। उसके लिए एक अलग कमरा ठीक किया एवं खान-पान की विशेष व्यवस्था की गयी। राजा साहब इरशाद के सम्मान में पार्टी, ड्रिंक, डाँस आदि के बहाने पानी की तरह रुपये बहा रहे थे। इससे इरशाद को राजा साहब से अपनी गरीबी का रोना रोने का साहस न हुआ। अन्त में उसने राजा साहब से लखनऊ जाने की इजाजत माँगी। राजा साहब ने दो दिन रुककर तीसरे दिन लखनऊ जाने की इजाजत दे दी। उनके सेक्रेटरी ने रेलवे स्टेशन फोन करके टिकट सुरक्षित करा दिया तथा किराया भी बता दिया। किराया था इकतालीस रुपये आठ आने। इरशाद ने अपने सम्मान को सुरक्षित रखने के लिए बयालिस रुपये दे भी दिये, जब कि उसकी जेब में उस समय कुल छियालिस रुपये ही थे।

इरशाद के मसूरी से चलने के दिन राजा साहब ने अच्छी-खासी टेनिस खिलाड़ियों को दावत दे दी। दोपहर की दावत के बाद इरशाद को विदा करने सेक्रेटरी उनके साथ टैक्सी से स्टेशन आये। जब टैक्सी ड्राइवर ने सेक्रेटरी के माध्यम से बिल दिया तो इरशाद ने बाकी बचे चार रुपये भी दे दिये। तीन रुपये आठ आने काटकर बाकी आठ आने ड्राइवर ने बख्शीश समझकर रख लिये। इरशाद कुछ कह न सका। इसके बाद एक कुली ने बिना पूछे ही उसके सामान को स्टेशन तक पहुँचा दिया। वह चार आने पैसे बख्शीश की आशा में खड़ा रहा पर इर्शाद की जेब में एक पैसा भी न था। अब सब कुछ सहने के बाद भी प्रतिष्ठा के मेहराव की ईंट केवल चार आने पैसे के लिए खिसकती-सी जान पड़ती थी। इस चार आने पैसे के लिए कुली की निगाहों से बचने के लिए इरशाद को गुसलखाने में छुपना पड़ा और गाड़ी निकल गयी।

(७) सती

कथा-सार—प्रस्तुत कहानी 'सती' शिवानी की एक रेलयात्रा में घटित ठगी की कहानी है। 'सती' प्रथा नारी-समाज में जहाँ अतिशय पवित्र माना जाता है वहीं आधुनिक समाजसेविकाओं और कानून की दृष्टि में एक अपराध भी है। परन्तु प्रस्तुत कहानी किसी पतिव्रता के सतीत्व की कथा न होकर ठगी एवं सती का मखौल है। कथा-सार इस प्रकार है—

अर्धकुम्भ मेले के अवसर पर प्रयाग में भारी भीड़ थी। रेलवे स्टेशन यात्रियों से ठसाठस भरा था। लेखिका ने कहीं जाने हेतु रिजर्वेशन कराया था। उनकी सीट के साथ तीन और महिलाओं का रिजर्वेशन था। लेखिका जब गाड़ी में चढ़ी तो दो महिलाएँ तो आ चुकी थीं पर तीसरी महिला अभी नहीं आयी थी। सहयात्री महिलाओं में एक महाराष्ट्रियन और एक पंजाबी थी। मराठी महिला आराम से लेटी पत्रिका पढ़ रही थी। उसे किसी से परिचय करने या बात करने की आवश्यकता नहीं समझती थी। उसके सामान पर मेजर जनरल बनोलकर लिखा था, जिससे अनुमान किया जा सकता था कि यह नाम उसके पति का होगा। पंजाबी महिला ने स्वयं अपना परिचय दे दिया कि वह एक आश्रम-संचालिका है और किसी समाजकल्याण गोष्ठी में भाग लेने लखनऊ जा रही है।

गाड़ी छूटते समय चौथी महिला भी आ गयी। सभी की दृष्टि अनायास ही उसकी ओर खिच गयी। क्योंकि वह अपने असाधारण डील-डौल, कद ६ फुट साढ़े १० इंच के कारण दर्शनीय थी। उसने आते ही अपना परिचय दिया कि वह प्रिटोरिया से सती होने के लिए भारत आयी है। उसका पति पिछले साल पर्वतारोहियों के दल के साथ भारत आया और तूफान में फँसकर मारा गया। उसका शव इस वर्ष बर्फ के नीचे से निकला है। उसका नाम मदालसा था। उसकी बात सुनकर समाजसेविका उसे समझाने लगी कि आपको ऐसी मूर्खता नहीं करनी चाहिए। यह एक अपराध है, पर उनके समझाने का उस पर कोई असर न हुआ। उसने सती होना अपने परिवार की परम्परा बताते हुए अपना दृढ़ निश्चय सुना दिया और गुसलखाने में हाथ-मुँह धोने चली गयी।

लेखिका ने जब मराठी महिला से इस बारे में पूछा तो उसने उत्तर में उसके दिमाग का स्क्रू ढीला बताया, जब कि समाजसेविका ने निश्चय किया कि लखनऊ में वह पुलिस की मदद से इसे रोकने का प्रयास करेगी। इतने में

मदालसा गुसलखाने से बाहर आयी और अपना नाश्तादान खोलते सभी सहयात्रियों को नाश्ता के लिए आमन्त्रित किया। उसके आग्रह पर सबने मिल-जुलकर खाना खाया। नाश्ता के बाद मदालसा ने सबको केवड़ा, इलाइची आदि सुगन्ध से युक्त एक-एक बीड़ा पान भी दिया, जिसे सबने खाया और सभी सो गये। सोने में सबको अच्छी नींद आयी और अच्छे-अच्छे सपने दीख पड़े। पर जागते ही जो कुछ दीख पड़ा वह उनसे अधिक कड़वा था। मदालसा सबका सामान बटोर कर चम्पत थी। मिसेज बनोलकर का बाक्स, जिसमें उनके जड़ाऊ गहने का सेट भी था, समाजसेविका का सूटकेस, जिसमें चन्दे के दस हजार रुपये थे और लेखिका का इकलौता पर्स, जिसमें मात्र पचपन रुपये एवं एक फर्स्ट क्लास का वापसी टिकट था, मदालसा के साथ ही गायब थे। तीनों महिलाएँ ठगी गयीं।

चेन खींचकर समाजसेविका ने गाड़ी रोकी और पुलिस में रिपोर्ट करने चल पड़ीं। सती को बचाने के लिए नहीं बल्कि उसे पकड़वाने के लिए। लेखिका को अन्त में दुःख है कि पुलिस उस सती मदालसा को पकड़ न सकी।

ठगी वास्तव में चतुराई की कला है, जिससे बुद्धिमान् भी धोखा खा ही जाते हैं। सभी सम्भ्रान्त महिलाएँ थीं, पर गच्चा खा गयीं। इस कहानी से एक बात स्पष्ट हो जाती है कि सफर के समय अपने सहयात्रियों से ज्यादा खुलना, उन पर अति विश्वास करना अच्छा नहीं होता। सफर में किसी का कुछ दिया हुआ सहज ही ग्रहण नहीं करना चाहिए। खाने-पीने की वस्तुएँ तो कदापि नहीं। क्या पता कोई मदालसा कुछ खिला-पिला कर सब कुछ लूट ले। यह इकलौटी घटना नहीं है। आये दिन अखबारों में इस प्रकार के अनेक समाचार निकलते रहते हैं। रेलवे स्टेशन पर विज्ञापन व पोस्टर भी लोगों को सावधान करने हेतु लगे रहते हैं, पर कौन ध्यान देता है।

(८) ठेस

कथासार—प्रस्तुत कहानी 'ठेस' हिन्दी के प्रसिद्ध कहानीकार फणीश्वर नाथ रेणु द्वारा लिखी गई है। 'ठेस' कहानी में वैयक्तिक स्वाभिमान एवं अस्मिता की श्रेष्ठता प्रतिपादित है। स्वाभिमान पर होने वाली चोट हर किसी को पीड़ा देती है। अमीर हो या गरीब, हर कोई स्वाभिमान एवं अस्मिता को बनाये रखना चाहता है।

कहानी का आरम्भ रेणुजी ने ग्रामीण अंचल में बसे निम्नवर्गीय व्यक्ति 'सिरचन' (श्रीचन्द) नामक बढ़ई के व्यक्तित्व से किया है। 'सिरचन' को ग्रामवासी कामचोर और निकम्मा समझते हैं, यद्यपि उसकी कारीगरी की सभी प्रशंसा करते हैं। सिरचन बूढ़ा हो गया है, इसलिए वह ज्यादा काम नहीं कर सकता। स्वभाव से ही वह चटोर भी है। इसीलिए वह जहाँ भोजन मिलता है, वहीं काम करता है। उसके बीवी-बच्चे पहले ही काल-कवलित हो गये, अब वह अकेला है। वह काम करता है तो बड़ी तन्मयता से। तन्मयता में बाधा उसे सह्य नहीं होती। उसे किसी की आलोचना या कटु बात बर्दाश्त नहीं। वह कहता है—फिर किसी दूसरे से काम करवा लीजिए, सिरचन मुँहजोर जरूर है पर कामचोर नहीं। सिरचन को भोजन में चिकनाई जरूर चाहिए, अन्यथा वह काम दूसरे दिन करने का बहाना कर अधूरा ही छोड़ देगा। तली, बघारी, तरकारी, घी, अचार, दही-चूड़ा आदि उसके प्रिय व्यञ्जन हैं। इनकी पूर्ति होने पर वह काम बड़ी लगन से करता है। वह जो मुँह में आये बक देता है, पर दूसरे द्वारा कही गयी बात उसे सह्य नहीं।

उसी ग्राम में भानू नामक एक लड़की थी, जिसकी विदायी होनी थी। भानू की माँ ने सिरचन को असली मोहरछाप वाली धोती देने का वादा कर विदाई के लिए सामान तैयार करने को काम पर लगा दिया। सिरचन ने बाँस की तीलियों तथा रंगीन सुतली से झालर डालकर चिक तैयार करना आरम्भ किया। उसके मध्य में सतभैया तारों की नक्कासी तथा किनारों में लगाये गोटे से वह चिक व सितलपाटी जगमगा उठी। लोगों ने समझा कि सिरचन अब की कोई नये फैशन की चीज बना रहा है। भानू की बड़ी भाभी को सिरचन का काम और मजदूरी जानकर ईर्ष्या हुयी। उसने कहा—यदि वह जानती कि केवल मोहरछाप धोती पर ही अच्छी चीज बन सकती तो वह अपने भैया को पहले ही ख़बर भेज देती। सिरचन ने जवाब दिया—मुहरछाप धोती के साथ रेशमी कुर्ता देने पर भी ऐसा न बनता। भानू दीदी का दूल्हा अफसर है और भानू दीदी काकी की सबसे छोटी बेटी है। भाभी को यह बात चोट कर गयी।

जब नाश्ता का समय हुआ तो भाभी ने उसे गुड़-चिउड़ा भेज दिया। भानू के भाई ने जब माँ से शिकायत की तो माँ के कहने पर भाभी ने थोड़ी बूँदियाँ भी दे दी। सिरचन ने कह दिया कि क्या मझली बहू मैके की मिठाई

भी ऐसे ही बाँटती हैं। यह सुनकर मँझली बहू रोने लगी। छोटी जाति के आदमी का मुँह छोटा होता है, उसे किसी के नैहर और ससुराल से क्या काम ? माँ ने भी उसे डाँट दिया और सिरचन नाराज होकर चला गया।

बाद में भानू का भाई उसे मनाने आया, पर सिरचन न माना। भानू अधूरे बने सामानों के साथ स्टेशन पहुँची तो वहाँ सिरचन एक शीतलपाटी, चिक और कुश की कलात्मक आसनी लिए खड़ा था। भानू उसे मुहरछाप धोती देना चाहती है, पर वह नहीं लेता है। वह वापस घर चला जाता है।

इस कहानी में कलाकार की मानसिक दशा, स्वाभिमान और कर्त्तव्य-भावना तथा आत्मीयता का चित्रण है। सिरचन के ठेस लगने के कारण पहले तो काम न करने का निश्चय कर लेता है, फिर भानू के प्रति स्नेह ने उसे काम करने पर विवश कर दिया।

(९) रस-बूंद

कथासार—प्रस्तुत कहानी 'रस-बूंद' श्रीद्विजेन्द्रनाथ मिश्र 'निर्गुण' जी की एक सामाजिक विषमता पर आधारित कहानी है। गरीबी और अमीरी जीवन की स्पष्ट झाँकी इस कहानी में विद्यमान है। कथा-सार इस प्रकार है—

पछाँही गाँव एक बड़ी आबादी वाला गाँव है। इस गाँव से शहर तक पक्की सड़क है, जिस पर मोटर, लारी और इक्के-ताँगे आते-जाते रहते हैं। यहाँ अनेक दुकानों के साथ एक मिठाई की भी दुकान है। इस गाँव में गंगासहाय रहता है। मिठाई की दुकान उसी की है। गंगासहाय का परिवार बहुत बड़ा रहा, जो अब अलग होकर गाँव के विभिन्न छोरों पर जा बसा है।

गंगासहाय के पिता ने इस मिठाई की दुकान से बहुत पैसा कमाया और उसकी गणना सम्भ्रान्त धनी परिवार में होने लगी, जब कि उसी परिवार का लेखराज बहुत गरीब था। वह शहर की दुकान पर नौकरी करता था। गंगा-सहाय को एक लड़का था, जिसे प्यार से सभी 'ललना' कहते थे। लेखराज को भी एक लड़का था, जिसे केवल उसके माता-पिता ही लल्ला कहकर बुलाते थे, बाकी लोग उसका सही नाम रामचन्दर बिगाड़ कर 'रामचन्ना' कह कर बुलाते थे।

लल्ला की माँ ने अपने लड़के के मन में यह बात भर दी थी कि तुम अमीर बाप के बेटे हो, तुम्हें रामचन्ना के साथ नहीं खेलना चाहिए, उससे

बात भी नहीं करनी चाहिए। वह गरीब है। फिर भी रामचन्ना लल्ला के साथ लगा रहता और भैया-भैया की रट लगाये रहता था।

एक दिन गली में सभी लड़के इक्की-दुक्की का खेल खेल रहे थे। उनका सरदार लल्ला था। रामचन्ना भी घूमते हुए आ पहुँचा और खेलना चाहा, पर लल्ला ने डाँटकर भगा दिया। रामचन्ना चुपचाप खड़ा उदास मन से खेल देखता रहा। थोड़ी ही देर में लल्ला की बेइमानी से लड़कों में झगड़ा हो गया और खेल रुक गया। फिर कोई दूसरा खेल खेलने का निर्णय हुआ। तय हुआ कि घोड़ी-घोड़ी खेला जाय। लेकिन परेशानी यह थी कि घोड़ी कौन बनेगा। इस पर लल्ला ने झट कह दिया कि रामचन्ना घोड़ी बनेगा। इस पर रामचन्ना तैयार हो गया और कहा कि मैं भी चढ़ूंगा। लल्ला ने कहा कि हाँ, तुम भी चढ़ना। लड़के बारी-बारी से उसकी पीठ पर सवारी करते रहे। रामचन्ना घोड़ी बनता रहा और नीचे सें गेंद भी उछालता रहा। अन्त में गेंद गिर गयी और लल्ला चोर बन गया। इस पर रामचन्ना ने कहा अब मैं चढ़ूंगा। हमारी बारी है, सवारी मैं करूँगा। रामचन्ना जब सवारी करने को तैयार हुआ तो लल्ला ने फिर डाँट दिया—भाग जा कनेटा, मैं चढ़ूंगा। मुंह तो देखो। यह कहकर लल्ला अपने मित्रों को पेड़े खिलाने के लिए पिता की दुकान पर ले गया। लेकिन वहीं पीछे खड़े रामचन्ना को पूछा तक नहीं। उसके सब मित्रों ने छक कर पेड़े खाये, फिर सब दुकान से चले गये।

गंगासहाय मिठाई बनाने के लिए कढ़ाई में चीनी की चासनी बना रहा था। थोड़ी-थोड़ी देर पर कलछुल से चासनी को चलाता रहता, जिससे बहुत-सा रस कढ़ाही के बाहर बूंद के रूप में गिर जाता। रामचन्ना ललचाई नजरों से कड़ाही के पास खड़ा मिठाइयों को देख रहा था। उसे बहुत दिन से मिठाई खाने को प्राप्त नहीं हुई थी। वह अपनी मिठाई खाने की इच्छा को नीचे गिरी बूंदों को चाट कर मिटाने लगा। इस पर गंगासहाय ने कुछ कहा नहीं पर बार-बार रस की बूंदों का गिरना और रामचन्ना का उन्हें चाटना अच्छा नहीं लगा। कुछ देर बाद गंगासहाय ने रामचन्ना को कड़ाही से चासनी लेने को कहा। रामचन्ना खुश हो गया और गर्म चासनी की कड़ाही में दोनों हाथ डाल दिये। परिणामस्वरूप उसके दोनों हाथों की उँगलियाँ जल गयीं और वह 'हाय री अम्मा' करता हुआ, रोता हुआ घर की ओर भाग गया। घर जाकर माँ से झूठ बोल कर पानी में हाथ डाल दिया, बाद में सही बात बतायी।

उसके हाथ में फफोले उग आये। वह जोर-जोर से रो रहा था। अनेक उपचार करने पर भी जलन कम न हुई। रातभर रामचन्ना को नींद नहीं आयी, उसे बुखार हो आया। माँ ने उसे गरम दूध पिलाया और स्वयं गंगासहाय को कोसती हुयी भूखी सो गयी।

इस प्रकार की घटना समाज में प्रतिदिन घटती रहती है। अमीर सदा गरीब को सताते हैं, पर गरीब कभी उफ तक नहीं करते। सबल और निर्बल के बीच का यह द्वन्द्व समाज के लिए कलंक है। निर्बल को भी जीने का उतना ही हक है जितना सबल को। इस प्रकार की विषमता और अत्याचार को खत्म किये बिना समाज का सुधार सम्भव नहीं।

(१०) अँधेरा

कथा-सार—प्रस्तुत कहानी हिन्दी के विख्यात बालसाहित्यकार डॉ० श्रीप्रसाद द्वारा लिखी गई है। यह कहानी एक अमेरिकन सैनिक के मानसिक अन्तर्द्वन्द्व की है। डगलस नामक एक सैनिक वियतनाम के युद्ध में अपने साथियों से बिछड़ गया। खाने-पीने का सामान खत्म हो जाने से भूख और प्यास से उसका दम निकला जा रहा था। केवल दो बिस्कुट और दो घूँट पानी बचा था। उसने वही खाकर कुछ पानी पिया। कुछ सन्तुष्टि हुयी पर शरीर में ताजगी नहीं आयी। शरीर के अंग हिलने-डुलने से इनकार कर रहे थे। तभी कहीं से बम फटने की आवाज आती है। भूख से व्याकुल डगलस सोचता है कि काश! एक बम उसके ऊपर भी आकर गिर जाता तो इस भूख-प्यास से तड़पते उसके जीवन का अन्त हो जाता।

उसे अपने चारों तरफ अँधेरा ही अँधेरा दीख पड़ता था। क्या करे, न करे का निर्णय न कर सका। उसका मन ग्लानि से भर गया। उसे अपनी मंगेतर याद आती है और वह सोचता है कि हर प्रेमिका अपने प्रेमी को शूरवीर एवं महान् लड़ाकू समझती है, परन्तु यदि वह देखे तो उसे पता लगे कि उसका प्रेमी मौका पाते ही मैदान छोड़कर भागना चाहता है। अपने प्राणों का मोह सबको होता है।

डगलस ने सोचा, यह लड़ाई व्यर्थ है, जिसमें तीस हजार से अधिक लोग मारे जा चुके हैं। उसे अपने देश से घृणा हो जाती है। वह वहाँ जाना तक नहीं चाहता। पर वहाँ उसकी मंगेतर भी है, जिसकी याद उसे इस समय व्याकुल

कर रही है। वह सोचता है कि अमेरिका व्यर्थ ही सबसे लड़ता रहता है। यदि उसे यह पहले मालूम होता तो वह फौज की नौकरी ही न करता। वह भूख से व्याकुल अपनी जेबें टटोलता है पर कुछ नहीं मिलता। अब उसके अन्दर का वीरत्व जागता है। वह सोचता है कि फौज में लायल्टी (इमानदारी) से ही आगे बढ़ने के चान्स मिलते हैं। उसे वर्तमान मौके का फायदा उठाना चाहिए। यदि वह इमानदारी से अपना कार्य करेगा तो तरक्की होगी एवं वेतन भी बढ़ेगा, जिससे वह अपनी मंगेतर से भलीभाँति शादी कर सकेगा। उठने की वह बहुत कोशिश करता है, पर उठ नहीं पाता।

पुनः उसकी विचारधारा बदलती है और वह सोचता है कि यदि वह अमेरिका का राष्ट्रपति होता तो यह युद्ध बन्द करा देता। सोचते-सोचते उसका माथा भन्नाने लगा। तभी दूर से आवाज आयी 'डैम'। यह उसके अपने ही साथियों की आवाज थी। डगलस इस आवाज को पहचानता था। वह बोलने की कोशिश करता पर आवाज बाहर नहीं आ रही थी। तभी 'डैम' की आवाज के साथ एक गोली उसके माथे में लगी। अन्तिम साँस में वह केवल इतना ही कह सका—वा-ट-र।

गोली चलाने वाले जब उसके पास आते हैं तो उसे पहचान कर सभी हक्के-बक्के हो जाते हैं। सबकी आँखें अपने ही साथी की मौत से गमगीन हो जाती हैं। इस तरह युद्ध के मैदान में भूख-प्यास से तड़पते एक शूरवीर की कहानी खत्म होती है।

इस कहानी के माध्यम से कहानीकार यह कहना चाहता है कि फौज का सिपाही भी अपने सीने में एक आम आदमी का-सा दयालु हृदय रखता है। अकारण हिंसा उसे प्रिय नहीं है, फिर भी देश के लिए, आजीविका के लिए वह लड़ता है। दूसरों पर जुल्म करने वाले देश के सैनिक हृदय से अपने ही देश से घृणा करते हैं, लेकिन मजबूरी उन्हें देशहित में काम करने को बाध्य करती है।

रामायण : सुन्दरकाण्ड' (४–६ सर्ग)

(संस्कृत का हिन्दी रूपान्तर)

(वाल्मीकि-कृत श्लोकों की तुलसी-कृत रामचरितमानस से तुलना)

संस्कृत : अधुना रघुनाथस्य सानुजस्य ममाग्रतः ।
कुशलं ब्रूहि हे वीर ! सत्वरं खरघातिनः ॥

हिन्दी : अब कहु कुशल जाउँ बलिहारी ।
अनुज सहित सुखभवन खरारी ॥

संस्कृत : कोमलामलचेतास्स कृपालू रघुनन्दनः ।
मदर्थं किं बिभर्त्यद्य नैष्ठुर्य्यं केन हेतुना ॥

हिन्दी : कोमल चित कृपालु रघुराई ।
कपि केहि हेतु धरी निठुराई ॥

संस्कृत : हा नाथ विस्मृतात्यर्थंमित्युक्त्वा वक्तुमक्षमा ।
अश्रुप्रवाहपूर्णाक्षी तूष्णी सीता स्थिताभवत् ॥

हिन्दी : वचन न आव नयन भरि वारी ।
अहह नाथ मोहिं निपट बिसारी ॥

संस्कृत : अम्वाद्य धैर्यमालम्ब्य रामस्य शृणु वाचिकम् ।
साश्रुगद्गदवाग्जात इत्युक्त्वा हनुमांस्तदा ॥

हिन्दी : रघुपति कर सन्देश अब, सुनु जननी धरि धीर ।
अस कहि कपि गदगद भयउ, भरे विलोचन नीर ॥

संस्कृत : द्रुमाणां नूतनपत्राणि कृशानुसदृशानि मे ।
शशी भानुसमो जातः कालरात्रिसमा निशा ॥

हिन्दी : नवतरु किसलय मनहुँ कृशानू ।
कालनिसा सम निसि ससि भानू ॥

संस्कृत : सन्ति कुन्तवनानीव सरिद्युद्भवमानि मे ।
वारिदास्तु जलं तप्तं तैलं वर्षन्ति मे तनु ॥

हिन्दी : कुवलय-विपिन कुन्तवन सरिसा ।
वारिद तपत तेल जनु वरिसा ॥

संस्कृत : आवयोः सत्यतां प्रेम्णो वेत्त्वेकं मानसं मम ।

हिन्दी : तत्त्व प्रेम कर मम अरु तोरा ।
जानत प्रिया एक मन मोरा ॥

संस्कृत : पतङ्गा इव रक्षांसि रामबाणः समोऽग्निना ।
मातराश्वसिद्धि क्षिप्रं मत्वा दग्धानि तानि च ॥

हिन्दी : निशिचर निकर पतंग सम, रघुपति बान कृशानु ।
जननी हृदय धीर धरु, जरे निसाचर जानु ॥

संस्कृत : यदि रामो विजानीयान्मातस्त्वामत्र संस्थिताम् ।
आनेतुं शीघ्रमागच्छेन्न विलम्बेन सर्वथा ॥

हिन्दी : जो रघुबीर होत सुधि पाई ।
करते नहि विलम्ब रघुराई ॥

संस्कृत : हन्तुं रक्षस्तमः स्तोमं सत्यं जानीहि जानकि ।
अचिराद्भविता रामनाराचतपनोदयः ॥

हिन्दी : राम बान रवि उए जानकी ।
तम बरुथ कँह जातुधान की ॥

संस्कृत : त्वादृशाः कपयः क्वाचिद् राक्षसातिबला भटाः ।

हिन्दी : हैं सुत कपि सब तुम्हहि समाना ।
जातुधान भट अतिबलवाना ॥

संस्कृत : उवाच तामहं शाखामृगो बुद्धिबलोल्पकः ।
परं रामप्रतापेन गरुडं भक्षयेदहिः ॥

हिन्दी : सुनु माता शाखामृग, नहिं बलबुद्धि विशाल ।
प्रभुप्रताप ते गरुडहिं, खाइ परम लघु व्याल ॥

संस्कृत : रामभक्तिप्रतापेन तेजसा च समन्विताम् ।
कपिवाणीं समाकर्ण्य तुतोष जनकात्मजा ॥

हिन्दी : मन सन्तोष सुनत कपि बानी ।
भगति प्रताप तेज बल सानी ॥

संस्कृत : प्रेम्णा मुहुर्मुहुर्नत्वा बद्ध्वाञ्जलिरुवाच ह ।

हिन्दी : बार-बार नायउ पद सीसा ।
बोला बचन जोरि कर कीसा ॥

संस्कृत : कृतकृत्योऽद्य भो मातराशिषा सत्यता तव ।

हिन्दी : अब कृतकृत्य भयउँ मैं माता।
आशिष तव अमोघ विख्याता ॥

संस्कृत : हनुमन्तं समालोक्य बलबुद्धिसमन्वितम्।
गच्छ श्रीरामचन्द्रस्य पुत्र पादयुगं स्मरन् ॥

हिन्दी : देखि बुद्धि-बल निपुन कपि, कहेउ जानकी जाहु।
रघुपतिचरन हृदय धरि, तात मधुर फल खाहु ॥

संस्कृत : आगतं वीक्ष्य वृक्षेण हत्वा गर्जन्महत्कपिः।

हिन्दी : आवत देखि बिटप गहि तर्जा।
ताहि निपाति महाधुनि गर्जा ॥

संस्कृत : मर्दिता निहताः केचित्केचिच्चूर्णीकृता भटाः।
केचिच्चावेदयामास रावणं कपिविक्रमम् ॥

हिन्दी : कछु मोरसि कछु मर्देसि, कछुक मिलाएसि धूरि।
कछु पुनि जाइ पुकारे, प्रभु मर्कट बल भूरि ॥

संस्कृत : समादिदेश तं पुत्रं युद्धे मा जहि मर्कटम्।
बद्धमानय पश्याजाने कुत्रत्यासौ खलः कपिः ॥

हिन्दी : मारेसि जनि सुत बाँधेसि ताही।
देखौं कीस कहाँ कर आही ॥

संस्कृत : स्वबन्धुवध-सञ्जात-कोपोऽतुलपराक्रमः ।
इन्द्रजित् प्रस्थितो योद्धुं हनूमान् दारुण भटम् ॥

हिन्दी : चला इन्द्रजित अतुलित योधा।
बन्धु निधन सुनि उपजा क्रोधा ॥

संस्कृत : तान्निहत्य तदा भूयो मेघनादमबोधयत्।
महागजाविव द्वौ तौ युयुधाते परस्परम् ॥

हिन्दी : तिन्हहि निपाति ताहि सन बाजा।
भिरे जुगल मानहु गजराजा ॥

संस्कृत : गिरिजे बन्धनिर्मुक्ता यस्य नामजपान्नरैः।

हिन्दी : जासु नाम जपि सुनहु भवानी।
भव-बन्धन काटहिं नर ज्ञानी ॥

संस्कृत : तद्दूतस्य कुतो बन्धः स्वाम्यर्थे तेन स्वीकृतः।

हिन्दी : तासु दूत बन्धन तर आवा।
प्रभु कारज लगि आपु बँधावा ॥

संस्कृत : कृताञ्जलिपुटैर्देवै यद् भ्रूभङ्गो निरीक्ष्यते ।

हिन्दी : कर जोरे सुर दिसिप विनीता ।
भृकुटि विलोकहिं सकल सभीता ॥

संस्कृत : कपिं दृष्ट्वा दशग्रीव उक्त्वावाच्यं वचोऽहसत् ।
पुनर्हतं सुतं स्मृत्वा हृदये विषसाद ह ॥

हिन्दी : कपिहिं विलोकि दसानन, विहँसा कहि दुर्वाद ।
सुतवध सुरति कीन्ह पुनि, उपजा हृदय विषाद ॥

संस्कृत : कस्त्वं कीशो ब्रूहि कस्याश्रयेणाकर्षीर्ध्वंसं वाटिकाभूरुहाणाम् ।

हिन्दी : कह लंकेस कवन तैं कीसा ।
केहि के बल घालेसि वन खीसा ॥

संस्कृत : यत्सामर्थ्याद्ब्रह्मणा सृज्येद्विश्वं शाश्वद् विष्णुना पाल्यते च ।
रुद्रेणान्ते नाश्यते राक्षसेन्द्र प्राप्तं दूतं तस्य मां विद्धि नूनम् ॥

हिन्दी : जाके बल विरचि हरि ईसा ।
पालत सृजत हरत दससीसा ॥

संस्कृत : शक्त्यास्य क्ष्मां सशैलां स्वमूर्ध्ना नित्यं शेषः पन्नगेशो बिभर्त्ति ।

हिन्दी : जो बल सीस धरे सहसानन ।
अष्टकोष समेत गिरिकानन ॥

संस्कृत : भग्ने मानं ते समाना नृपाणां यश्चाभांक्षीद्रौद्रमस्त्रं पिनाकम् ।
भाराक्रान्तो नैव चावैति भारं प्राप्तं दूतं तस्य मां विद्धि नूनम् ॥

हिन्दी : हर कोदण्ड कठिन जेहि भंजा ।
तोहि समेत नृपदल मद गंजा ॥

संस्कृत : लब्ध्वैश्वर्यो यत्कृपालेशतोऽसि जित्वा सर्वंस्थावरं जङ्गमञ्च ।
यस्यानैषीत्प्रेयसीमत्र मूर्ख प्राप्तं दूतं तस्य मां विद्धि नूनम् ॥

हिन्दी : जाके बल लवलेस ते, जितेहु चराचर झारि ।
तासु दूत मैं जाकर, हरि आनेहु प्रिय नारि ॥

संस्कृत : स्वामिन् क्षुच्छान्त्यै मया भक्षितानि
प्राणत्राणेव किञ्चित्फलानि ।
वृक्षा भग्नाः वानरस्य स्वभावा-
देवं भूयो वायुसूनुर्बभाषे ॥

हिन्दी : खायउँ फल प्रभु लागी भूखा।
कपि सुभाव ते तोरेउँ रूखा॥

संस्कृत : लज्जा नैतद्बन्धनस्य प्रभो मे कर्त्तुं कार्यं स्वप्रभोरागतोऽहम्।

हिन्दी : मोहिं न कछु बाँधे कर लाजा।
कीन्ह चहउँ निज प्रभु कर काजा॥

संस्कृत : त्राता प्रपन्नस्य दयासमुद्रः प्रभुः खरारी रघुवंशनाथः।
त्रास्यत्यवश्यं शरणागतं त्वां विस्मृत्य दोषं तव राक्षसेन्द्र॥

हिन्दी : प्रनतपाल रघुवंशमनि, करुणासिन्धु खरारि।
गये शरण प्रभु राखिहैं सब अपराध बिसारि॥

संस्कृत : श्रीरामचन्द्रस्य पादपद्मं निधाय स्वान्ते लङ्काराज्यमेतद्भुनक्तु।

हिन्दी : रामचरन पंकज उर धरहू।
लंका अचल राज तुम्ह करहू॥

संस्कृत : वंशे पौलस्त्ये शशाङ्कामलेऽस्मिन्
माभूद्व्यर्थंलाञ्छनं निशिचरेश।

हिन्दी : रिषि पुलस्त्य कुल विमल मयंका।
तेहि कुलमहँ जनि होहु कलंका॥

संस्कृत : योषित्सर्वभूषणैर्भूषितापि वस्त्रैर्हीना सा नैव भाति।

हिन्दी : वसनहीन नहि सोह सुरारी। सब भूषन भूषित वर नारी।

संस्कृत : यासां मूले वारिमूलं नदीनां न स्याच्छुष्यन्त्येव ता प्राविडन्ते।

हिन्दी : सजल मूल जिन्ह सरितन्ह नाहीं।
बरसि गये पुनि तबहिं सुखाही॥

संस्कृत : मूलं मोहस्यातिदुःखस्य दाता सर्वो गर्वः सर्वथा त्वं जहीहि।
पारावारं रावण त्वं भजस्व श्रीरामाख्यं तं रघूणामधीशम्॥

हिन्दी : मोह मूल बहुसूलप्रद, त्यागहु तुम अभिमान।
भजहु राम रघुनायक, कृपासिन्धु भगवान्॥

संस्कृत : तवासन्नागता मृत्युर्यच्छिक्षयसि मूढ माम्।

हिन्दी : मृत्यु निकट आवा खल तोहीं।
लागेसि अधम सिखावन मोहीं॥

संस्कृत : श्रुत्वेदं राक्षसाः सर्वेऽधावन् हन्तुं कपीश्वरम्।
तदा सनाथः सचिवैर्विभीषण उपाययौ॥

हिन्दी : सुनत निशाचर मारन धाए।
सचिवन्ह सहित विभीषन आए ॥

संस्कृत : प्रियपुच्छान् कपीन्मत्वा मन्त्रं चक्रुस्ततोऽसुराः।
तैलाम्बरैरावृतं पुच्छं दग्धव्यं चास्य निश्चितम् ॥

हिन्दी : कपि कै ममता पूंछ पर, सबहि कहेउ समझाई।
तेल बोरि पट बाँधि पुनि, पावक देहु लगाइ ॥

संस्कृत : लाङ्गूलेन विहीनोऽयं गमिष्यति महाकपिः।
आनेष्यति तदावश्यं स्वकीयं स्वामिनं शठः ॥

हिन्दी : पूँछहीन वानर तँह जाइहि।
तब शठ निज नाथहिं लै आइहि ॥

संस्कृत : अवाप्य रावणस्याज्ञामज्ञाः सर्वे निशाचराः।
तामेव रचनामाशु रचयामासुरञ्जसा ॥

हिन्दी : जातुधान सुनि रावन वचना। लागे रचै मूढ सोइ रचना ॥

संस्कृत : हनूमानकरोल्लीलामेवथ भास बालिघम्।
यद्वेष्टनाम्नाशिष्टं घृततैलाम्बरं पुटि ॥

हिन्दी : रहा न नगर वसन घृत तेला। बाढ़ी पूँछ कीन्ह कपि खेला ॥

संस्कृत : आहत्य पणवान् दीर्घान् कृत्वा करतलध्वनीन्।
ददतुः कपिपुच्छं ते विभ्राम्य परितः पुरीम् ॥

हिन्दी : बाजहिं ढोल देहिं सब तारी। नगर फेरि पुनि पूंछ प्रजारी ॥

संस्कृत : अट्टालिकायाः शिखरे समारूढस्ततो शिवे।
उत्प्लुत्य हनुमान्वीरो राक्षस्यस्त्रासमागताः ॥

हिन्दी : चिवुकि चढ़ेउ कपि कनक अटारी।
भईं सभीत निशाचर नारी ॥

संस्कृत : वाता एकोनपञ्चाशदीश्वरप्रेरिता ववुः।
अट्टहासं ततः कृत्वा जगर्ज कपिकुञ्जरः।
वर्द्धयित्वा वपुः स्वीयमाकाशस्पर्शि चाकरोत् ॥

हिन्दी : हरिप्रेरित तेहि अवसर चले मरुत उनचास।
अट्टहास करि गरजा, कपि बढ़ि लाग अकास ॥

संस्कृत : विशालापि तनुलघ्वी भरद्वाज हनुमतः।
मन्दिरामन्दिरं क्षिप्रमारोहति ततः कपि ॥

हिन्दी : देह विशाल परम हरुआई। मन्दिर ते मन्दिर चढ़ि धाई ॥

संस्कृत : हा मातर्हा पिता हा भ्रातरद्य महापदि।
त्रायस्व कोऽपि त्रायस्व प्रलापोऽयं समागतः ॥

हिन्दी : तात मातु हा सुनिय पुकारा।
एहि अवसर को हयहि उबारा ॥

संस्कृत : प्रागेव रावणं सर्वे वयं ब्रूहि यद् वचः।
वेषेण वानरः कोऽपि सुरोऽयं नैव वानरः ॥

हिन्दी : हम जो कहा यह कपि नहि होई।
वानर रूप धरे सुर कोई ॥

संस्कृत : अवज्ञायाः सतामेतत्फलं प्रत्यक्षतां गतम्।
अनाथस्येव नगरीं लङ्कां दहति वानरः ॥

हिन्दी : साधु अवज्ञा कर फल ऐसा।
जरै नगर अनाथ कर जैसा ॥

संस्कृत : दग्ध्वा निमेषमात्रेण लङ्का जाम्बुनदालया।
ऋते विभीषणागारमहदाश्चर्यमभूदिदम् ॥

हिन्दी : जारा नगर निमिष एक माहीं।
एक बिभीषन कर गृह नाहीं ॥

संस्कृत : क्रमव्युत्क्रममार्गेण लङ्कां दग्ध्वा कपीश्वरः।
पुनर्मध्ये समुद्रं स हनुमान्न्यपतद्बली ॥

हिन्दी : उलटि पुलटि लंका सब जारी।
कूदि परा पुनि सिन्धु मँझारी ॥

संस्कृत : निर्वाप्य पुच्छमायासं ह्रित्वा कृत्वा वपुर्लघु।
हस्तौ संयोज्य जानक्याः सम्मुखे चाब्रवीदिदम् ॥

हिन्दी : पूँछ बुझाइ खोई श्रम, धरि लघुरूप बहोरि।
जनकसुता के आगे, ठाढ़ भयउ कर जोरि ॥

संस्कृत : मातर्मह्यमपि ज्ञानं दातव्यं किञ्चिदीप्सितम्।
यथा श्रीरामचन्द्रेण त्वदर्थं में समर्पितम् ॥

हिन्दी : मातु मोहिं दीजे कछु चीन्हा।
जैसे रघुनायक मोहि दीन्हा ॥

संस्कृत : चूडामणिं समुन्मुच्य सीता तस्मै ददौ तदा ।
जग्राह सह हर्षेण तदा तं पवनात्मजः ।।

हिन्दी : चूडामणि उतारि तब दयऊ ।
हरष समेत पवनसुत लयऊ ।।

संस्कृत : प्रणतार्तिहरेर्व्याख्या मदर्थे संविधाय माम् ।
उद्धरास्मान्महाकष्टात्सीता प्रोक्तवतीति माम् ।।

हिन्दी : दीन दयाल विरद सम्भारी ।
हरहु नाथ मम संकट भारी ।।

संस्कृत : जयन्तस्य पुनर्वृत्तं स्मारय प्राणवल्लभम् ।
श्रीरामबाणशक्तिं त्वं मदर्थं च प्रकाशय ।।

हिन्दी : तात शक्रसुत कथा सुनायहु ।
बाणप्रताप प्रभुहिं समुझाएहु ।।

संस्कृत : यदि मासान्तरे रामो नागच्छेदिह भो ! कपे ।
सत्यं वदामि जीवन्तीमिमां दासीं न चाप्नुयात् ।।

हिन्दी : मास दिवस महुँ नाथ न आवा ।
तो पुनि मोहिं जियत नहिं पावा ।।

संस्कृत : ब्रूहि त्वं केन विधिना स्वप्राणान्धारयाम्यहम् ।
प्राणाधारस्त्वमपि च गन्तुमिच्छसि साम्प्रतम् ।।

हिन्दी : कहु कपि केहि विधि राखउँ प्राना ।
तुम्हहू तात कहत अब जाना ।।

संस्कृत : हनुमच्छीतलं स्वान्तं त्वामालोक्याभवल्लघुः ।
दाहकं मे तदेवाह स पुनः सैव च यामिनी ।।

हिन्दी : तोहिं देखि शीतल भइ छाती ।
पुनि मो कहँ सोइ दिन सोइ राती ।।

संस्कृत : दत्वा धैर्यं समाश्वास्य ततः सीतां स मारुतिः ।
तत्पादवन्दनं कृत्वा ततो गन्तुं प्रचक्रमे ।।

हिन्दी : जनकसुतहि समुझाइ करि, बहुविधि धीरज दीन्ह ।
चरनकमल सिर नाइ कपि, गमन राम पहँ कीन्ह ।।

हिन्दी-व्याकरण

प्रश्न—व्याकरण की परिभाषा देते हुए शब्दों का वर्गीकरण एवं ...का लक्षण व भेदोपभेद वर्णन कीजिए।

उत्तर—व्याकरण—जिस विद्या (ज्ञान) के द्वारा किसी भाषा के शब्द, ...य, वाक्यसमूहों आदि का विधिवत् सही-सही पढ़ना, लिखना, बोलना ... अर्थबोध करना आ जाय, वह व्याकरण कहलाती है। प्रत्येक भाषा का ...ना पृथक् व्याकरणशास्त्र है। इसमें शब्द का मूल रूप से शंसन होने के ...रण इसे शब्दशास्त्र भी कहते हैं।

शब्द—प्रत्येक सार्थक वर्ण-समुदाय शब्द कहलाता है। कार्य व फल की ...ट से शब्द को निम्न आठ वर्गों में विभक्त किया जाता है—

(१) संज्ञा, (२) सर्वनाम, (३) क्रिया, (४) विशेषण, (५) क्रिया-...षण, (६) सम्बन्धबोधक अव्यय, (७) समुच्चयबोधक अव्यय और ...) विस्मयबोधक अव्यय। इनमें विशेषण और अव्यय के भेदों को मिला ...से कुल संख्या पाँच ही बचती है। पर कार्यबोध की सुगमता के लिए आठ ...गिनाये गये हैं। प्रत्येक का भेदोपभेद सहित सोदाहरण लक्षण इस ...र है—

संज्ञा

किसी वस्तु, व्यक्ति, स्थान, धातु या समूह के नाम को संज्ञा कहते हैं। ...का वास्तविक कार्य है—पद (शब्द) के अर्थ (द्रव्यादि) की पहचान ...बोधन। उदाहणार्थ—पुस्तक, मोहन, वाराणसी, चाँदी, गुच्छा आदि। इसी ...अनुसार इसके पाँच भेद हैं—(१) व्यक्तिवाचक, (२) जातिवाचक, ...) भाववाचक, (४) समूहवाचक और (५) द्रव्य या धातु वाचक संज्ञा।

(१) **व्यक्तिवाचक संज्ञा**—जिस शब्द से किसी एक व्यक्ति या वस्तु, ...न, दिशा, समुद्र, देश, नदी, पर्वत, नगर, दिन आदि का बोध हो, उसे ...क्तिवाचक संज्ञा कहते हैं। जैसे—राम, गीता, गाँधी, पूर्व, अरबसागर, भारत, ...राणसी, हिमालय आदि।

(२) **जातिवाचक संज्ञा**—जिन संज्ञाओं से एक ही प्रकार के अने
वस्तुओं का अथवा व्यक्तियों का बोध हो, उन्हें जातिवाचक संज्ञा कहते हैं
जैसे—मनुष्य, घर, नदी, पर्वत, ग्राम, घोड़ा, गाय, कौआ, घड़ी, कुर्सी, तूफा
बिजली, वर्षा आदि।

(३) **भाववाचक संज्ञा**—जिस संज्ञा शब्द से व्यक्ति या वस्तु के गुण
धर्म, दशा अथवा व्यापार का बोध होता है, उसे भाववाचक संज्ञा कहते हैं
भाववाचक संज्ञाओं का निर्माण जातिवाचक संज्ञा, विशेषण, क्रिया, सर्वन
और अव्यय में पा, पन, ता, त्व, ई आदि जोड़कर किया जाता है। उदाह
णार्थ— बूढ़ा + पा = बुढ़ापा, लड़का + पन + लड़कपन, मित्र + ता = मित्र
दास + त्व = दासत्व, पण्डित + ई = पण्डिताई आदि।

(४) **समूहवाचक संज्ञा**—जिस संज्ञा शब्द से वस्तु अथवा व्यक्ति
समूह का बोध हो, उसे समूहवाचक संज्ञा कहते हैं। जैसे—सभा, से
गुच्छा, कुंज, मण्डल, झुण्ड आदि।

(५) **द्रव्यवाचक संज्ञा**—जिस संज्ञा का शब्द से नापतोल वाली व
का बोध हो, उसे द्रव्यवाचक संज्ञा कहते हैं। जैसे—लोहा, सोना, चा
दूध, पानी, तेल, पेट्रोल, तेजाब आदि। द्रव्यवाची संज्ञाओं का वचन
सामान्यतया नहीं होता।

विशेष—समूहवाचक और द्रव्यवाचक संज्ञाओं का जातिवाचक संज्ञा
अन्तर्भाव सम्भव होने के कारण कुछ वैयाकरण इन्हें अलग नहीं मानते
संज्ञाओं के प्रयोग में परिस्थितिवश उलट-फेर भी सम्भव है। इसके अ
रिक्त लिंग, वचन, कारक आदि के द्वारा भी संज्ञाओं में परिवर्तन होते हैं
कभी-कभी विशेषण, क्रिया, क्रियाविशेषण और अव्ययबोधक शब्द भी सं
का कार्य करने लगते हैं।

लिंग—शब्द की जाति को लिंग कहते हैं। संज्ञा के जिस रूप से व्यक्ति
वस्तु की जाति का बोध हो, उसे लिंग कहते हैं। लिंग का अर्थ जाति
पहचान या चिह्न माना जाता है। संस्कृत आदि सभी भाषाओं में पुल्लि
स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंग के भेद से तीन लिंग माने गये हैं, किन्तु हिन्दी भा
में पुल्लिग और स्त्रीलिंग में दो ही भेद मान्य हैं।

पुल्लिग—जिस संज्ञा शब्द से पुरुष जाति का बोध हो, उसे पुल्लि
कहते हैं। जैसे—राम पढ़ता है। आम का फल मीठा होता है आदि।

स्त्रीलिंग—जिस संज्ञा शब्द से स्त्री जाति का बोध होता है, उसे स्त्रीलिंग ते हैं। जैसे—गाय दूध देती है। घड़ी बन्द है आदि।

विशेष—संज्ञाओं के लिंग की पहचान उनके वाक्य में प्रयोग होने पर स्पष्ट रूप से होती है लिंग वाक्यों में प्रयोग की दशा में विशेषण, क्रिया, नाम और विभक्तियों में विकार उत्पन्न कर देता है।

वचन—शब्दों के जिन रूपों के द्वारा उनकी एक या एक से अधिक संख्या बोध हो, उसे वचन कहते हैं। अथवा शब्दों के संख्याबोधक विकारी रूप वचन कहते हैं। इसके दो मुख्य भेद हिन्दी भाषा में मान्य हैं—(१) वचन और (२) बहुवचन। संस्कृत आदि अन्य भाषाओं में द्विवचन मक भेद भी पाया जाता है।

(१) एकवचन—विकारी शब्द के जिस रूप से एक पदार्थ या व्यक्ति बोध होता है, उसे एकवचन कहते हैं। जैसे—नदी, लड़का, घोड़ा, म इत्यादि।

(२) बहुवचन—विकारी शब्द के जिस रूप से अधिक पदार्थों या क्तियों का बोध होता है, उसे बहुवचन कहते हैं। जैसे नदियाँ, लड़के, ड़े, बच्चे आदि।

विशेष—वचन के कारण सभी शब्दों—संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण और या के रूप विकृत होते हैं। किन्तु सर्वनाम, विशेषण और क्रिया मूलतः ओं पर ही आश्रित हैं, इसलिए वचन में संज्ञा शब्दों का रूपान्तर होता है। रूपान्तर विभक्ति सहित या विभक्ति रहित दो प्रकार का होता है।

कारक—वाक्य में संज्ञा या सर्वनाम के जिस रूप से अन्य शब्दों के साथ का सम्बन्ध जाना जाता है, उसको कारक कहते हैं। संस्कृत भाषा की ति हिन्दी भाषा में आठ कारक माने गये हैं। इनके नाम व चिह्न इस ार हैं—

कारक	चिह्न
१. कर्त्ता	ने।
२. कर्म	को।
३. करण	से, के, द्वारा (सहायता के अर्थ में)।
४. सम्प्रदान	के, लिए, को।
५. अपादान	से।

६. सम्बन्ध	का, के, की, रा, रे, री, ना, ने, नी।
७. अधिकरण	में, पै, पर।
८. सम्बोधन	हे, अरे, ओ।

यहाँ प्रत्येक कारक और उसकी विभक्ति (चिह्न) के प्रयोग का उ हरण सहित परिचय दिया जा रहा है—

(१) **कर्त्ता कारक**—वाक्य में जो शब्द किसी क्रिया के करने व व्यक्ति (संज्ञा या सर्वनाम) का बोध कराये, उसे कर्त्ता कहते हैं। इसकी विभक्तियाँ हैं—(१) जिसमें 'ने' चिह्न का प्रयोग नहीं होता और जि क्रिया के लिंग, वचन और पुरुष कर्त्ता के अनुसार होते हैं। जैसे—मो खाता है। (२) ज़िसमें 'ने' चिह्न का प्रयोग कर्त्ता के साथ होता है व जिसमें क्रिया के लिंग, वचन और पुरुष क्रिया के कर्म के अनुसार होते जैसे—श्याम ने मिठाई खायी।

विशेष—'ने' चिह्न का प्रयोग कर्त्ता के साथ सकर्मक क्रिया के सामान भूत, आसन्नभूत, पूर्णभूत, हेतुहेतुमद्भूत और सन्दिग्ध भूतकाल में होने पर होता है। सकर्मक क्रिया के वर्तमान और भविष्यत् काल में 'ने' चिह्न प्रयोग नहीं होता।

(२) **कर्म कारक**—वाक्य में क्रिया का फल जिस शब्द पर पड़ता उसे कर्म कहते हैं। इसकी विभक्ति 'को' है। जैसे—राम ने रावण को मार शिकारी ने बाघ मारा। उसने झूठ कहा।

विशेष—कर्म कारक का प्रयोग भी अप्रत्यय ('को' चिह्न रहित) व सप्रत्यय ('को' चिह्न सहित) दो प्रकार का होता है।

(३) **करण कारक**—वाक्य में जिस शब्द से क्रिया के सम्बन्ध का ब हो, उसे करण कारक कहते हैं। करण का अर्थ साधन है। इसकी विभक्ति से, द्वारा, के द्वारा, के जरिए, के बिना आदि हैं। जैसे—मुझसे यह काम होगा। तीर से बाघ मार दिया। उसके द्वारा यह बात मैंने सुनी आदि।

(४) **सम्प्रदान कारक**—जिसके लिए क्रिया की जाती है, उसका बो कराने वाले शब्द के रूप को सम्प्रदान कहते हैं। इसकी विभक्ति 'के लिए' 'को' है। 'को' का प्रयोग 'के लिए' के अर्थ में ही सम्प्रदान में होता है। अन्य कर्म कारक है। जैसे—हरि मोहन को रुपये देता है। माँ ने बच्चे के लि खिलौने खरीदे।

विशेष—सम्प्रदान कारक की 'के हित', 'के वास्ते', 'के निमित्त' आदि अन्य विभक्तियाँ भी प्रयोग में पायी जाती हैं।

(५) **अपादान कारक**—संज्ञा के जिस रूप से किसी वस्तु के अलग होने का भाव प्रकट होता है, उसे अपादान कारक कहते हैं। इसकी विभक्ति 'से' है। करण कारक में 'से' प्रत्यय साधन अर्थ का बोध कराता है और अपादान में अलगाव। जैसे—पेड़ से पत्ते गिरते हैं। हिमालय से गंगा निकलती है। वह घर से बाहर आया।

(६) **सम्बन्ध कारक**—संज्ञा या सर्वनाम शब्द के जिस रूप से किसी अन्य शब्द के साथ सम्बन्ध या लगाव प्रतीत हो, उसे सम्बन्ध कारक कहते हैं। जैसे—वह राम का भाई है। राम की कमीज नीली है। यह मेरी पुस्तक है आदि।

विशेष—सम्बन्ध कारक की विभक्ति 'का' है, जो लिंग, वचन और पुरुष के अनुसार का, के और की में बदल जाया करती है। इस कारक में अधिकार, कर्तृत्व, कार्य-कारण, मोल-भाव, परिमाण इत्यादि का बोध होता है। सर्वनाम शब्दों के साथ इस कारक में रा, रे, री और ना, ने, नी प्रत्ययों का प्रयोग होता है। जैसे—मेरा लड़की, तुम्हारी गाड़ी, अपना भरोसा, अपनी रोजी आदि।

(७) **अधिकरण कारक**—क्रिया के आधार को सूचित करने वाले संज्ञा या सर्वनाम के रूप अधिकरण कारक में होते हैं। इस कारक की विभक्ति 'मे', 'पर' आदि हैं। जैसे—तालाब में कमल खिले हैं। पेड़ पर बन्दर बैठा है। वह घर में नहीं है। किताब टेबुल पर रखी है आदि।

विशेष—कभी-कभी अधिकरण कारक की विभक्तियों का लोप भी देखा जाता है। जैसे—वह सन्ध्या समय गंगा तट टहलने जाता है। वह द्वार-द्वार भीख माँगता फिरता है। इस जगह एक सभा होने वाली है आदि।

(८) **सम्बोधन**—संज्ञा के जिस रूप से किसी के पुकारने या संकेत करने का भाव पाया जाता है, उसे सम्बोधन कारक कहते हैं। इस कारक की कोई विभक्ति नहीं होती। इसे प्रकट करने के लिए हे, अरे, रे आदि शब्दों का प्रयोग संज्ञा के पूर्व किया जाता है। जैसे—हे राम ! यहाँ आओ। अरे, तुम आ गये ? इत्यादि।

सर्वनाम

सर्वनाम उस विकारी शब्द को कहते हैं, जो पूर्वापर सम्बन्ध से किसी भी संज्ञा शब्द के बदले प्रयुक्त किया जाता है। हिन्दी भाषा में कुल ग्यारह सर्वनाम हैं—मैं, तूं, आप, यह, वह, जो, सो, कोई, कुछ, कौन और क्या। प्रयोग के अनुसार इन्हें छः श्रेणियों में विभक्त किया गया है, जो इस प्रकार हैं—१. पुरुषवाचक, २. निजवाचक, ३. निश्चयवाचक, ४. अनिश्चयवाचक, ५. सम्बन्धवाचक और ६. प्रश्नवाचक। प्रत्येक का परिचय इस प्रकार है—

(१) **पुरुषवाचक सर्वनाम**—पुरुषवाचक सर्वनाम बात कहने वाले, सुनने वाले तथा बात से सम्बन्धित व्यक्ति के नाम के बदले में प्रयुक्त होते हैं। हिन्दी में तीन पुरुष—उत्तम पुरुष, मध्यम पुरुष और अन्य पुरुष मान्य हैं। बात कहने वाला उत्तम पुरुष, सुनने वाला मध्यम पुरुष और जिसके सम्बन्ध में बात की जाय, वह अन्य पुरुष होता है। तीनों पुरुषों के सर्वनाम क्रमशः इस प्रकार हैं—

(क) उत्तम पुरुष—मैं, हम।

(ख) मध्यम पुरुष—तू, तुम, आप।

(ग) अन्य पुरुष—वह, वे, यह, ये।

(२) **निजवाचक सर्वनाम**—इस सर्वनाम का रूप आप है, जो अवधारण (निश्चय), पर-वारण (दूसरों से भिन्नता), सर्वसाधारण के अर्थ में प्रयुक्त होता है। यह कर्त्ता का रूप होते हुए भी स्वयं कर्त्ता का काम नहीं करता। जैसे—मैं अपना पाठ पढूंगा। वह आप ही बोल उठा। वह अपने को सुधार रहा है आदि।

(३) **निश्चयवाचक सर्वनाम**—जिस सर्वनाम से वक्ता के पास या दूर की किसी वस्तु के निश्चय का बोध होता है, उसे निश्चयवाचक सर्वनाम कहते हैं। जैसे—यह हमारा राष्ट्रध्वज है। यह हमारा देश है आदि।

(४) **अनिश्चयवाचक सर्वनाम**—जिससे किसी निश्चित वस्तु का बोध न हो, उसे अनिश्चयवाचक सर्वनाम कहते हैं। जैसे—कुछ खा लो। कोई आया है आदि।

(५) **सम्बन्धवाचक सर्वनाम**—जिस सर्वनाम से वाक्य में किसी दूसरे सर्वनाम से सम्बन्ध स्थापित किया जाय, उसे सम्बन्धवाचक सर्वनाम कहते हैं।

जैसे—जो परिश्रम से पढ़ेगा, वही उत्तीर्ण होगा। जैसा करोगे, वैसा ही फल पाओगे आदि।

(६) **प्रश्नवाचक सर्वनाम**—प्रश्न करने के अर्थ में प्रयुक्त होने वाले सर्वनामों को प्रश्नवाचक सर्वनाम कहते हैं। ये हैं—कौन, क्या, कहाँ, कब आदि। कौन का प्रयोग चेतन के लिए और क्या का प्रयोग अचेतन के लिए किया जाता है। जैसे—कौन आ रहा है? तुम क्या खा रहे हो? वह कहाँ जा रहा है? आदि।

विशेषण

जो शब्द किसी संज्ञा या सर्वनाम शब्द की विशेषता प्रकट करें, उसे विशेषण कहते हैं। जैसे गन्दा कपड़ा, सुन्दर बालक, चार आम आदि। विशेषण को छः मुख्य श्रेणियों में निम्न प्रकार से विभक्त किया जाता है—१. गुणवाचक, २. परिमाणवाचक, ३. संख्यावाचक, ४. संकेतवाचक, ५. व्यक्तिवाचक और ६. विभागवाचक। प्रत्येक का सोदाहरण परिचय इस प्रकार है—

(१) **गुणवाचक**—जिस शब्द से किसी संज्ञा या सर्वनाम शब्द के काल, आकार, स्थान, रंग, दशा, गुण (स्वभाव) आदि स्वाभाविक धर्म का बोध हो, उसे गुणवाचक विशेषण कहते हैं। जैसे—पुराना किला, नया कपड़ा, अच्छे काम, तेज चाकू, लाल टोपी, सच्चा व्यक्ति, ईमानदार आदमी आदि।

(२) **परिणामवाचक**—जो विशेषण किसी संज्ञा या सर्वनाम शब्द के परिमाण (तौल या माप) का बोध कराते हैं, उन्हें परिमाणवाचक विशेषण कहते हैं। जैसे—एक किलो चीनी, थोड़ा दूध, गजभर कपड़ा आदि।

(३) **संख्यावाचक**—जो विशेषण संज्ञा या सर्वनाम शब्द की निश्चित संख्या का बोध कराते हैं, उन्हें संख्यावाचक विशेषण कहते हैं। जैसे—आधी रोटी, पाँच अमरूद आदि।

(४) **संकेतवाचक**—जो विशेषण संज्ञा की ओर संकेत करे, उसे संकेतवाचक विशेषण कहते हैं। जैसे—यह आदमी, वह कुत्ता आदि।

(५) **व्यक्तिवाचक**—व्यक्तिवाचक संज्ञा से विशेषण रूप में परिवर्तित शब्दों को व्यक्तिवाचक विशेषण कहते हैं। जैसे—इलाहाबादी अमरूद, बनारसी साड़ी आदि।

(६) **विभागवाचक**—जिस विशेषण से पृथकता का बोध हो, उसे

विभागवाचक विशेषण कहते हैं। जैसे—प्रत्येक लड़के को मिठाई दो। दो-दो लड़कें एक साथ आओ आदि।

विशेष—विशेषण सदा संज्ञा या सर्वनाम के रूप में रहता है। जब कई संज्ञा या सर्वनाम एक साथ प्रयुक्त हों तो पूर्व वाला पद उत्तरपद का विधेय, उत्तरपद विशेष्य और उसके बाद का पद विशेषण होता है। जैसे—यह आम मीठा है।

क्रिया—जिस शब्द से किसी काम का होना या करना समझा जाय, उसे क्रिया कहते हैं। जैसे—खाना, पीना, सोना, जाना आदि। क्रिया के रूप, कर्त्ता अथवा कर्म के लिंग, वचन और पुरुष के अनुरूप बदलते रहते हैं। क्रिया के मुख्यत: तीन वर्ग स्वीकार्य हैं—१. अकर्मक, २. सकर्मक और ३. प्रेरणार्थक। इसके अतिरिक्त भी व्याकरणशास्त्र में क्रिया के रूप भेद मिलते हैं, परन्तु सबका परिचय अपेक्षित नहीं है। तीनों प्रमुख वर्गों का परिचय इस प्रकार है—

(१) **अकर्मक क्रिया**—जब क्रिया का परिणाम क्रिया के साथ ही समाप्त हो जाता है, इसका फल कोई नहीं भोगता, तो उसे अकर्मक क्रिया कहते हैं। जैसे—राम हँसता है। वह दौड़ता है आदि।

(२) **सकर्मक क्रिया**—जब क्रिया के व्यापार का फल कर्त्ता को छोड़कर कर्म पर पड़ता है, तब उसे सकर्मक क्रिया कहते हैं। जैसे—मोहन दूध पीता है। राधा पुस्तक पढ़ती है।

(३) **प्रेरणार्थक क्रिया**—कर्त्ता क्रिया को स्वयं न कर किसी, अन्य के द्वारा सम्पन्न कराता है तो ऐसी क्रिया को प्रेरणार्थक क्रिया कहते हैं। जैसे—उसने मन्दिर का निर्माण कराया। खेल-शिक्षक लड़कों को अभ्यास कराता है।

अव्यय

जिस शब्द में पुरुष, लिंग, वचन और कारक आदि के कारण कुछ भी विकार न हो, उसे अव्यय कहते हैं। अव्यय भी चार वर्गं में विभक्त हैं—(१) क्रियाविशेषण, (२) सम्बन्धसूचक अव्यय, (३) समुच्चयबोधक अव्यय और (४) विस्मयबोधक अव्यय।

(१) **क्रियाविशेषण**—जिस अव्यय से क्रिया की विशेषता प्रकट होती है, उसे क्रियाविशेषण अव्यय कहते हैं। जैसे—अब यहाँ थोड़ा धीरे बोलो। घोड़ा बहुत तेज दौड़ता है।

अर्थ के अनुसार क्रियाविशेषण अव्यय भी चार प्रकार के माने जाते हैं—(क) कालवाचक क्रियाविशेषण अव्यय, (ख) स्थानवाचक क्रियाविशेषण अव्ययं (ग) परिणामवाचक क्रियाविशेषण अव्यय और (घ) रीतिवाचक क्रियाविशेषण अव्यय। किसी-किसी वैयाकरण ने क्रियाविशेषण के भेदोपभेदों की संख्या दस तक मानी है। ये भेद क्रियाविशेषण के क्रम, हेतु, निश्चय, अनिश्चय, निषेध और आवृत्ति-बोध कराने के कारण माने गये हैं। यदि इस प्रकार भेद माने जायें तो और भेद भी हो सकते हैं। संक्षेप में क्रियाविशेषण अव्यय किसी क्रिया के धर्म का बोध कराते हैं।

(२) **सम्बन्धबोधक अव्यय**—वाक्य में जो शब्द क्रिया और संज्ञा अथवा सर्वनाम के बीच सम्बन्ध जोड़ते हैं, उन्हें सम्बन्धबोधक अव्यय कहते हैं। जैसे—राम विद्यालय से घर तक दौड़ा। सम्बन्धसूचक अव्यय भी दो प्रकार के माने गये हैं—(अ) सम्बद्ध-सम्बन्धसूचक और (ब) अनुबद्ध-सम्बन्धसूचक। जिन सम्बन्धसूचक अव्ययों का प्रयोग विभक्तियों के पश्चात् सम्बन्ध बताने हेतु किया जाता है, उन्हें सम्बद्ध-सम्बन्धसूचक कहते हैं। जैसे—घर के भीतर, घर के समीप, घर की अपेक्षा आदि। जो अव्यय दो शब्दों में सम्बन्ध बताते हुए भी किसी विभक्ति के पीछे न हों, उन्हें अनुबद्ध-सम्बन्धसूचक अव्यय कहते हैं।

(३) **समुच्चयबोधक अव्यय**—दो शब्दों, दो वाक्यों या वाक्यांशों को परस्पर मिलाने वाले अव्ययों को समुच्चयबोधक अव्यय कहा जाता है। इस वर्ग में और, तो, या, मानों, कि, अथवा आदि अव्यय आते हैं। जैसे—राजा और रानी लखनऊ गये। मोहन उत्तीर्ण तो हो जाता, परन्तु परीक्षा के दिनों वह रुग्ण हो गया आदि।

(४) **विस्मयबोधक अव्यय**—जिन अव्यय शब्दों से मन की स्थिति (विस्मय, हर्ष, शोक, आश्चर्य, क्रोध, भय, तिरस्कार और ग्लानि) प्रकट होती है, उन्हें विस्मयबोधक अव्यय कहते हैं। जैसे—अरे !, ओ हो, छिः, शाबास, वाह-वाह आदि। ये शब्द प्रायः वाक्य के पूर्व ही प्रयुक्त होते हैं।

मुहावरा

(अर्थ तथा वाक्य में प्रयोग)

१. अंगार बनना—(क्रुद्ध होना)—कमजोर लोग छोटी-सी बात पर अंगार बन जाते हैं।

२. अंगारों पर चलना (दुःख सहना)—मैं जीवन भर अंगारों पर चलता रहा हूँ।

३. अंगूठा दिखाना (समय पर धोखा देना)—मोहन ने अपना काम निकाल कर सोहन को अँगूठा दिखा दिया।

४. अन्धा बनाना (धोखा देना)—बाजीगर खेल में लोगों को अन्धा बना देता है।

५. अन्धे की लकड़ी (सहारा)—रमेश अपने पिता के लिए अन्धे की लकड़ी बन गया है।

६. अन्धेर नगरी चौपट राजा (धाँधली होना)—यहाँ कोई कानून नहीं चलता। यहाँ तो अन्धेर नगरी चौपट राजा का कानून हैं।

७. अन्त बिगाड़ना (लक्ष्य न पाना)—नकल करके परीक्षार्थी अपना अन्त बिगाड़ते हैं।

८. अगर-मगर करना (हीला-हवाली करना, टालना)—घूस लेने के लिए दफ्तरों में अगर-मगर की वृत्ति पनप चुकी है।

९. अक्लमन्द की दुम (अत्यधिक बुद्धिमान् बनना)—दस तक पहाड़ा तो याद नहीं, पर अपने अक्लमन्द की दुम अपने को गणितज्ञ कहता है।

१०. अढ़ाई दिन की हुकूमत (कुछ दिन की शानो-शौकत)—जनाब, खूब सोच-समझ कर काम करें। यह अढाई दिन की हुकूमत सदा नहीं रहेगी।

११. अपना उल्लू सीधा करना (स्वार्थ पूरा करना)—अपना उल्लू सीधा करने के लिए लोग गधे को भी बाप कहने को तैयार रहते हैं।

१२. अपने पांव कुल्हाड़ी मारना (संकट को निमन्त्रण देना)—अपने से अधिक ताकतवर को चुनौती देकर रमेश ने अपने पांव में कुल्हाड़ी मारी है।

१३. अपने पैरों पर खड़ा होना (स्वावलम्बी होना)—महेश का बड़ा बेटा नौकरी पाकर अब अपने पैरों पर खड़ा हो गया है।

१४. अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनना (अपनी प्रशंसा स्वयं करना)—योग्य व्यक्ति अपने मुँह मियाँ मिट्ठू नहीं बनते।

१५. अब-तब होना (मरणासन्न होना)—रमेश को दवा की जरूरत नहीं। वह तो अब-तब हो रहा है।

१६. आँच न आने देना (पूर्ण सुरक्षा देना)—तुम बेफ़िक्र रहो। मैं तुम पर जरा भी आँच न आने दूँगा।

१७. आँख मारना (संकेत करना)—मोहन ने राम को आँख मारी और दोनों कक्षा से भाग लिये।

१८. आँखों का तारा होना (अतिप्रिय होना)—आजकल श्याम बड़े बाबू की आँखों का तारा बना है।

१९. आँख में धूल झोंकना (धोखा देना)—चोर आँखों में धूल झोंक कर लूट लेते हैं।

२०. आँख से उतर जाना (अप्रिय होना)—दुर्जन व्यक्ति सबकी आँखों से उतर जाते हैं।

२१. आँख का पानी मरना (निर्लज्ज होना)—राकेश की आँखों का पानी मर चुका है। उसे अपने किये की जरा भी सोच नहीं है।

२२. आटा-दाल का भाव मालूम होना (वास्तविकता या झंझट का पता चलना)—साक्षात्कार के लिए जाने पर अच्छे-अच्छों को भी आटा-दाल का भाव मालूम हो जाता है।

२३. आसमान सिर पर उठाना (कोलाहल करना)—आजकल छोटी-छोटी बातों के लिए आसमान को सिर पर उठा लेना फैशन बन गया है।

२४. आनाकानी करना (बहाना करना)—आलसी व्यक्ति हर काम में आनाकानी किया करते हैं।

२५. आड़े हाथों लेना (खरी-खोटी सुनाना)—आज राम ने मोहन को खूब आड़े हाथों लिया।

२६. आग-बबूला होना (क्रुद्ध होना)—मोहन राधा का रोना सुनते ही आग-बबूला हो गया।

२७. आस्तीन का साँप होना (गुप्त शत्रु, विश्वासघाती होना)—दुष्ट

प्रकृति के लोग सदा आस्तीन के साँप हुआ करते हैं। अतः इनकी संगत खूब सोच-समझ कर करनी चाहिए।

२८. आपा-धापी करना (मनमानी करना)—'सुराज' के कारण आफिस में बाबू लोग खूब आपा-धापी कर रहे हैं।

२९. इने-गिने (कुछ ही)—आजकल इने-गिने ही सज्जन लोग मिलते हैं।

३०. ईंट से ईंट बजाना (सर्वनाश कर देना, कड़ा मुकाबला)—पानीपत के मैदान में वीरों ने ईंट से ईंट बजा दी।

३१. ईद का चाँद होना (दर्शन दुर्लभ होना)—आजकल उधार खाकर ईद का चाँद हो जाने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है।

३२. ईंट का जवाब पत्थर से देना (करारा जवाब देना)—हम दुष्ट लोगों को ईंट का जवाब पत्थर से देना चाहते हैं।

३३. उगल देना (गुप्त भेद प्रगट कर देना)—मार खाकर चोर अपना भेद उगल ही देता है।

३४. उठा न रखना (पूरा प्रयास करना)—मोहन ने परीक्षा पास करने के लिए उठा न रखा। आखिर में सफल हो ही गया।

३५. ऊँट के मुँह में जीरा (कम देना)—सरकार ने महँगाई-भत्ता क्या दिया, समझो, ऊँट के मुँह में जीरा दे दिया।

३६. उँगली उठाना (दोष निकालना)—हर काम में उँगली उठाना आसान है, पर काम को करना नहीं।

३७. उलटी गंगा बहाना (असम्भव को सम्भव करना)—परिश्रमी लोग उद्यम से उलटी गंगा बहा देते हैं।

३८. उलटी-सीधी सुनाना (भला-बुरा कहना)—उलटा-सीधा बकना दुष्टों का काम है।

३९. उधेड़बुन करना (सोचना-विचारना)—आलसी हर काम में उधेड़बुन अधिक किया करते हैं।

४०. उँगली पर नचाना (वश में रखना)—दुर्गावती ने मुगलों को अपने बल से उँगली पर नचा कर रख दिया।

४१. एड़ी-चोटी का पसीना एक कर देना (कठिन परिश्रम)—परीक्षार्थी परीक्षा प्राप्त करने के लिए एड़ी-चोटी का पसीना एक कर देते हैं।

४२. एक आँख से देखना (भेद-भाव न करना)—सज्जन सबको एक आँख से देखते हैं।

४३. एक पन्थ दो काज (दोहरा लाभ लेना)—राम सबेरे गंगा किनारे नहाने जाता है, आते समय घरेलू सामान भी लेता आता है। इसे कहते हैं एक पन्थ दो काज।

४४. ओस चाटना (दिल को भुलावा देना)—ओस चाटने से किसी की प्यास नहीं बुझती है।

४५. ओंठ चाटना (पछताना)—डाकू के हाथ से निकल जाने पर सिपाही ओंठ चाटते रह गये।

४६. कच्चा-चिट्ठा खोलना (भेद खोल देना)—मार खाकर चोर कच्चा-चिट्ठा खोल देते हैं।

४७. कलई खुलना (भेद प्रगट होना)—आरक्षण ने सरकार की कलई खोल दी है।

४८. कदम बढ़ाना (आगे चलना, उन्नति करना)—बहादुर सदा आगे कदम बढ़ाये रहते हैं।

४९. कदम पीछे करना (पीछे हटना, काम न करना)—कायर अपना कदम पीछे खींच लेते हैं।

५०. कदम से कदम मिलाना (सहयोग करना)—देश के विकास में कदम से कदम मिला कर चलना होगा।

५१. कलम तोड़ देना (अच्छी प्रस्तुति देना)—गबन उपन्यास में प्रेमचन्द ने कलम तोड़ दी है।

५२. कलेजा थामना (जी कड़ा करना)—दुकान पर लूट-पाट होते देख रमेश ने अपना कलेजा थाम लिया।

५३. कलेजा फटना (अत्यधिक दुःखी होना)—गाँधी की मृत्यु सुनकर लोगों का कलेजा फटने लगा।

५४. कलेजा दहल जाना (भय होना)—शेर की दहाड़ सुनकर अच्छों अच्छों का कलेजा दहल जाता है।

५५. कान खड़ा करना (चौकन्ना होना)—उड़ाका दल के आते ही नकलचियों के कान खड़े हो जाते हैं।

५६. कान का कच्चा होना (तुरन्त विश्वास कर लेना)—उतावले लोग कान के कच्चे होते हैं। ऐसे लोग अफवाहों को सच मान लेते हैं।

५७. काम आना (सार्थक सिद्ध होना, शहीद होना)—सच्चे सैनिक सदा देश के काम आते हैं।

५८. कान भरना (चुगली करना, वहकाना)—चमचों का काम सदा दूसरों के कान भरना है।

५९. काया पलट होना / करना (परिवर्तन होना या करना)—नये अफसर ने आते ही सड़ियल दफ्तर की काया पलट दी।

६०. किनारा काटना / करना (साथ छोड़ना)—दुष्ट मित्र संकट के समय किनारा काट लेते है।

६१. किताब का कीड़ा होना (पढ़ते ही रहना)—मोहन को किताबों के सिवाय कुछ नहीं सूझता। वह किताब का कीड़ा हो गया है।

६२. कुत्ते की मौत मरना (बुरी दशा झेलना)—दुष्टजन कुत्ते की मौत मरते हैं।

६३. खाक छानना (बहुत तलाश करना)—समस्त कमरों की खाक छानने के बाद भी चोर नहीं पकड़ा गया।

६४. खाक में मिलाना (बर्बाद कर देना)—राम ने चोरी करके परिवार की इज्जत को खाक में मिला दी है।

६५. खिल्ली उड़ाना (अवहेलना करना)—दुष्टजन व्यर्थ ही सज्जनों की खिल्ली उड़ाया करते हैं।

६६. खून सूखना (भयभीत होना)—पुलिस को आते देख चोरों का खून सूख गया।

६७. खून के घूंट पीना (गुस्सा को रोकना)—रमेश मोहन की बदतमीजी पर कक्षा में खून का घूंट पीकर रह गया।

६८. खून खौलना (अत्यधिक क्रोध आना)—छात्रनेता की पिटाई की खबर से छात्रों का खून खौल उठा।

६९. खून का प्यासा होना (मारने की इच्छा करना)—राम और श्याम एक-दूसरे के खून के प्यासे हो गये हैं।

७०. खेत रहना (मर जाना, शहीद होना)—प्लासी के युद्ध में हजारों वीर खेत रहे।

७१. खोदा पहाड़ निकली चूहिया (स्वल्प लाभ होना)—रात-रात भर जाग कर मेहनत करने के बाद भी उत्तीर्णांक ही आये। सच है, खोदा पहाड़ निकली चूहिया।

७२. खोद-विनोद करना (जाँच करना)—आतंकवादियों को पकड़ने के लिए अधिक खोद-विनोद करना पड़ रहा है।

७३. खून-पसीना एक करना (कठिन परिश्रम करना)—महेन्द्र ने अपने बेटे को अफसर बनाने के लिए खून-पसीना एक कर दिया, पर वह अफसर बन जाने पर बाप को दूध की मक्खी बना दिया।

७४. खटाई में पड़ना (रुक जाना)—अफसर के तबादले का मामला खटाई में पड़ गया है।

७५. गला छुड़ाना/छूटना (पीछा छुड़ाना, फुर्सत पाना)—कंजूस दोस्त की दोस्ती क्या टूटी, गला छूटा। मैंने उसे अलविदा कह अपना किसी तरह गला छुड़ाया।

७६. गर्दन उठाना (प्रतिवाद करना)—अफसर के सामने किसी की गर्दन उठाने की हिम्मत नहीं होती।

७७. गर्दन झुकना (शर्म आना)—शर्म से उसकी गर्दन झुक गयी।

७८. गाल बजाना (बढ़-चढ़ कर बात करना)—घमण्डी व्यर्थ ही गाल बजाया करते हैं।

७९. गड़े मुर्दे उखाड़ना (बीती बात याद करना)—गड़े मुर्दे उखाड़ना ही अब विपक्ष का काम रह गया है।

८०. गले का हार बनना (अतिप्रिय होना)—सज्जन सबके गले का हार बन जाते हैं।

८१. गाँठ बाँधना (सदा स्मरण रखना)—अच्छे लोगों की अच्छी सीख सदा गाँठ बाँध कर रखनी चाहिए।

८२. गिरगिट की तरह रंग बदलना (एक नीति पर चलना)—राजनेता गिरगिट की तरह रंग बदलते रहते हैं।

८३. गुदड़ी का लाल होना (अत्यधिक गुणवान् होना)—नेताजी सुभाषचन्द्र गुदड़ी के लाल थे।

८४. गूलर का फूल होना (लापता होना)—वह तो ऐसा गूलर का फूल हो गया कि उसके बारे में कुछ कहना मुश्किल है।

८५. गागर में सागर भरना (थोड़े में बहुत)—बिहारी के दोहों में गागर में सागर भरा है ।

८६. घड़ों पानी पड़ना (अत्यधिक लज्जित होना)—राम के चोरी करते समय रंगे हाथ पकड़े जाने पर उस पर घड़ों पानी पड़ गया ।

८७. घाव पर नमक छिड़कना (दुःखी को और सताना)—राम के अनुत्तीर्ण होने पर उसके अन्य साथी अफसोस जाहिर करते हुए घाव पर नमक छिड़कने लगे ।

८८. घोड़े बेंच कर सोना (चैन लेना)—रमेश अपनी बेटी का व्याह करके घोड़े बेंच कर सो रहा है ।

८९. चकमा देना (धोखा देना)—चोर पुलिस को चकमा देकर भाग गया ।

९०. चल बसना (मर जाना)—युद्धभूमि में अनेक वीर सैनिक चल बसे ।

९१. चार दिन की चाँदनी (थोड़े दिन का सुख)—सत्ता का सुख चार दिन की चाँदनी है । खूब मजे कर लो ।

९२. चाँदी कटना/काटना (सुख लूटना)—राम के क्या कहने, आजकल तो उसकी चांदी कट रही है ।

९३. चार चाँद लगाना/लगना (उन्नति करना, समृद्ध होना)—राम ने परीक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त कर अपने कुल की कीर्ति में चार चाँद लगा दिया ।

९४. चुल्लू भर पानी में डूब मरना (लज्जित होना)—रमेश ! तुमने अपने कुल का नाम खूब रोशन किया । तुम्हें तो चुल्लू भर पानी में डूब मरना चाहिए ।

९५. चैन की बंशी बजाना (फुर्सत की साँस लेना; आराम करना)—पुलिस के घेरे से निकल कर चोरों का गिरोह चैन की बंशी बजा रहा है ।

९६. छप्पर फाड़ कर देना (अहैतुकी कृपा)—ईश्वर जब देता है तो छप्पर फाड़ कर देता है ।

९७. छाती पर मूंग दलना (परेशान करना)—सबल दायाद निर्बल की छाती पर मूंग दलने को तैयार रहते हैं ।

९८. छोटे मुंह बड़ी बात (बढ़-चढ़ कर बोलना)—बकवादी लोग अकसर छोटे मुंह बड़ी बात किया करते हैं ।

९९. जमीन पर पैर न रखना (अत्यधिक उत्साहित होना)—मोहन ने हाईस्कूल क्या पास कर लिया, वह जमीन पर पैर ही नहीं रखता।

१००. जहर का घूंट पीना (कटु बात को सहना)—दुष्टों के प्रत्यारोप सुनकर सज्जन मर्यादा-भंग के भय से जहर के घूंट पीकर रह जाते हैं।

१०१. जान पर खेलना (भारी खतरा मोल लेना)—मोहन पानी में डूबती बालिका को बचाने हेतु अपनी जान पर खेल गया।

१०२. झख मारना (पश्चात्ताप करना, बेकार बैठना)—कोई काम न करके आलसी बैठे-बैठे झख मारते रहते हैं, जब कि उद्यमी कार्यसिद्धि में लगे रहते हैं।

१०३. टेढ़ी खीर होना (मुश्किल होना)—समुद्र में तैरना टेढ़ी खीर है।

१०४. ठोकर खाना (हानि उठाना, कष्ट उठाना)—महाराणा प्रताप को पराजय के बाद दर-दर की ठोकरें खानी पड़ी।

१०५. डूबते को तिनके का सहारा (विपत्ति पार करने की आशा)—संकट की घड़ी में जो भी थोड़ी बहुत सहायता प्राप्त होती है, वह डूबते को तिनके का सहारा सिद्ध होती है।

१०६. नमक-मिर्च लगाना (बढ़ा-चढ़ा कर कहना, चापलूसी करना)—हरि ने एक छोटी-सी बात को ऐसा नमक-मिर्च लगाया कि नरोत्तम का रमेश से चिर वैर हो ही गया।

१०७. नाकों चने चबाना/चबवाना (कठिनाई में डाल देना)—वीर शिवाजी के सैनिकों ने मुगलसेना को नाकों चने चबवा दिये।

१०८. होश उड़ना/उड़ाना (भयभीत होना/करना)—वीर हमीद ने पाकिस्तानी सेना के होश उड़ा दिये।

निबन्ध

(१) प्रिय कवि : गोस्वामी तुलसीदास

हिन्दी के सुविज्ञों के लिए सबसे अधिक परिचित ग्रन्थ रामचरितमानस एवं इसके रचनाकार सन्तकवि गोस्वामी तुलसीदासजी हैं। हिन्दी-काव्य का नाम लेते ही प्रतिनिधि कवि के रूप में एकमात्र गोस्वामी तुलसीदास का नाम स्मरण हो आता है। इनका नाम पढ़े-लिखे विद्वानों के अतिरिक्त अनपढ़ लोगों की भी जिह्वा पर आदर पाता है। रामचरितमानस का प्रचार न केवल भारत में अपितु जहाँ भी भारतीय मूल के लोग हैं, विदेशों में भी समान रूप से है। रूस और इंगलैण्ड जैसे देशों में भी रामलीला का आयोजन रामायण के आधार पर ही खेला जाता है। यद्यपि गोस्वामी तुलसीदास ने स्वयं स्वीकार किया है कि रामायण के वे अकेले स्रष्टा नहीं, रचनाकार भी नहीं, अपितु रामायण की संख्या व उसके रचनाकारों की संख्या अपार है, फिर भी आजकल जिस रामायण या रामचरितमानस का जन-जन में प्रसार है, वह गोस्वामी तुलसीदास की कृति ही है।

परन्तु बड़े दुःख की बात है कि इतने जनप्रिय कवि का इतिहास अब भी प्रामाणिक रूप से उपलब्ध नहीं है। इनके जन्मस्थान, जन्मसंवत्, माता-पिता आदि के बारे में विद्वान् एकमत नहीं हैं। अन्तःसाक्ष्य के आधार पर जो जानकारी मिलती है कि ये बचपन में बहुत गरीब थे। इनके माता-पिता ने इन्हें पैदा करके ही त्याग दिया था। इस सम्बन्ध में विद्वान् अटकल लगाते हैं कि ये अभुक्त मूल में पैदा हुए थे, इसलिए माता-पिता ने त्याग दिया। कुछ लोगों का कहना है कि महामारी (हैजा) के कारण इनके माता-पिता बचपन में ही चल बसे। कारण जो भी हो, स्वयं गोस्वामीजी ने कवितावली में अपने विषय में इस प्रकार का संकेत दिया है—

'बारे ते ललात बिललात द्वार-द्वार दीन।
जानत हौं चारि फल चारि ही चमक को' ॥

तथा—

'माता-पिता जग जाइ तज्यो।
विधिहू न लिखी कछु भाल भलाई' ॥

इसी प्रकार इनकी शिक्षा-दीक्षा के विषय में भी मतभेद है। रामचरितमानस के अन्तःसाक्ष्य के अनुसार इनके गुरु का नाम नरहरि (नृसिंहदास) था। ये सूकर खेत (वाराहक्षेत्र) में रहते थे। वहीं इन्होंने गुरु-मुख से रामचरित सुना था। इस सम्बन्ध में रामचरितमानस का निम्न सन्दर्भ द्रष्टव्य है—

'मैं पुनि निज गुरु सन सुनी, कथा सुसूकर खेत।
समुझी नहिं तस बालपन, तब अति रहौं अचेत॥
यदपि कही गुरु बारहिं बारा। समझ परी कछु मति अनुसारा॥'

इनकी स्थिति ईसा की सोलहवीं शताब्दी में रामचरितमानस के निम्न उद्धरण से आंकी जाती है—

'संवत् सोलह सौ इकतीसा। करौं कथा हरिपद धरि सीसा।
नौमी भौमवर मधुमासा। अवधपुरी यह चरित प्रकासा'॥

उस समय तक भारत में ईसवीय सन् का प्रचलन नहीं था। संवत् के नाम से विक्रम संवत् ही प्रचलित था। ईसवीय सन् के अनुसार सन् १५७४ में मानस की रचना चैत्रमास की शुक्लपक्ष नवमी (रामनवमी) को अयोध्या में प्रारम्भ हुयी। अन्तःसाक्ष्य के आधार पर ही इनकी माता का नाम हुलसी देवी माना जाता है। बहिःसाक्ष्यों में भक्तमाल के रचयिता नाभादास और कविवर रहीम के दोहे के आधार पर इतना कहा जा सकता है कि इनका जन्म राजापुर (बाँदा) 'दुबे पुरवा' ग्राम में हुआ था। इनके पिता का नाम आत्माराम दुबे और माता का नाम हुलसी था। माता-पिता का प्यार छिन जाने पर इनका पालन-पोषण मुनिया नाम की एक दाई ने किया। उसने इनका नाम 'रामबोला' रखा था। बाद में ये बाबा नरहरिदास के संरक्षण में आये। उन्होंने ही इनका द्विज-संस्कार किया और तुलसीदास नामकरण किया। रामकथा श्रवण इन्होंने नरहरिदास से ही किया था। बाद में काशी आकर शेष सनातन की पाठशाला में वेदान्त दर्शन का अध्ययन किया था। इनका विवाह रत्नावली से हुआ था। रत्नावली की फटकार/से ही इनको विराग उत्पन्न हुआ और ये संन्यासी बन गये। संवत् १६८० (१६३३ ईसवीय) में काशी में उनका पार्थिव शरीर पंचतत्त्व में विलीन हुआ। इस सम्बन्ध में निम्न दोहा प्रमाण माना जाता है—

'संवत् सोलह सौ असी, असी गंग के तीर।
श्रावण शुक्ला सप्तमी, तुलसी तज्यो शरीर'॥

रचनाएँ—गोस्वामीजी ने अवधी भाषा में रचनाएँ की हैं। इन्होंने अपने काल में प्रचलित सभी काव्य-शैलियों को अपनाया है। इनके समय तक पाँच प्रकार की काव्य-शैलियाँ प्रख्यात थीं—(१) विद्यापति की गीत-शैली, (२) सन्तों की दोहा-शैली, (३) सूफी सन्त जायसी की चौपाई, छन्द या आख्यान शैली (४) भाट कवियों की कवित्त शैली और (५) रहीम कवि की वरवै छन्द शैली। गोस्वामीजी ने रामचरितमानस की रचना में गीत-शैली को छोड़ सभी शैलियों का प्रयोग किया है। इसकी रचना आख्यान-शैली के चौपाई, दोहा, सोरठा, मत्तगयन्द छन्द के अतिरिक्त अनेक संस्कृत छन्दों में हुयी है। मानस के अतिरिक्त कृष्णगीतावली और विनयपत्रिका (गीत-शैली), दोहावली (दोहा-शैली), वैराग्यसन्दीपनि (वेदान्त ग्रन्थ), रामाज्ञा, रामलला नहछू, जानकीमंगल, वरवै रामायण (वरवै कवित्त शैली) और कवितावली (कवित्त) आदि प्रमुख रचनाएँ हैं।

भावपक्ष—गोस्वामी तुलसीदास ने मानव-जीवन के विभिन्न आयामों का जितना सूक्ष्म व विशद वर्णन किया है, उतना शायद ही किसी कवि ने किया है। इन्होंने अपने आकर ग्रन्थ मानस का लक्ष्य ही 'कहत सुनत सबकर हित होई। भाषाबद्ध करब मैं सोई॥' रखा है। मानस भाव, भाषा और शैली, तीनों दृष्टि से समृद्ध महाकाव्य या प्रबन्ध काव्य है। इसमें माता-पिता, भाई, स्वामी, सेवक, पति-पत्नी, बालक, वृद्ध, राजा, प्रजा आदि सभी के मानसिक एवं बाह्य क्रिया-व्यापारों का सूक्ष्मतया एवं सम्यक्तया निर्वाह किया गया है। धर्म, राजनीति एवं सामाजिक व्यवस्था का मर्यादित स्वरूप जो मानस में दीख पड़ता है, वह अन्यत्र किसी ग्रन्थ में नहीं। महात्मा गाँधी ने जो रामराज्य की कल्पना की थी, उसका आधार भी मानस ही था।

भाषा-शैली—तुलसीदास की भाषा संस्कृत से परिमार्जित अवधी है। इन्होंने व्रजभाषा का भी प्रयोग परिमार्जित रूप में ही किया है। संस्कृत के तत्सम रूपों के प्रयोग से छन्द और अधिक प्रभावशाली बन गये हैं। शैली की दृष्टि से देखा जाय तो तुलसी ने अपने समय तक प्रचलित सभी शैलियों में परिमार्जित रचना की है। भाषा-शिल्प की दृष्टि से भी तुलसी की रचनाएँ समृद्ध हैं। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि तुलसी का काव्य-साहित्य अपने

आप में तत्कालीन विश्वकोष है। तुलसी एक सन्त ही नहीं, महान् समाजशास्त्री, वैज्ञानिक, भूगोलवेत्ता और युगद्रष्टा महाकवि के रूप में हमारे सामने उपस्थित होते हैं। आज के वैज्ञानिक भौतिकवादी युग में भी इनका रामचरितमानस सामान्य काव्य की कोटि से ऊपर उठकर जन-जन में श्रद्धा एवं विश्वास का स्थान ले चुका है। इसे वाल्मीकि और व्यास से भी अधिक समर्थन प्राप्त है तथा इसका स्थान पवित धर्मग्रन्थों में हिन्दुत्व के प्रतिनिधि ग्रन्थ के रूप में है।

ऐसी बात नहीं कि तुलसीदास की रचना मानस विवादों के घेरे से बाहर हो। समय-समय पर अनेक आपत्तियाँ उठती रहीं हैं। कभी नारी-समाज की ओर से तो कभी असवर्ण-समाज की ओर से। कभी विभिन्न सम्प्रदायों की ओर से भी आक्षेप किये गये हैं। पर सोना सोना ही रहता है, चाहे उसे हथौड़े से पीटा जाय या आग में तपाया जाय या पत्थर पर घिसा जाय। रामचरितमानस का भी जितना अधिक जोरदार विरोध हुआ, वह और अधिक प्रसार पाता गया। आज तुलसीदास को मरे हुए लगभग ५०० वर्ष होने को है, फिर भी अपने मानस के माध्यम से हमारे बीच वर्तमान से हैं।

(२) महापुरुष राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी

भारत की पवित्र धरती पर हर एक युग में कोई-न-कोई महापुरुष उत्पन्न हुआ है, जिसने दुःखी एवं दीनता के चंगुल से भारतवासियों को उबार कर सुखी एवं समृद्ध जीवन प्रदान किया है। इस कार्य हेतु उसे अपने सुख का त्याग करना पड़ा है। अपने प्राणों की चिन्ता किये बिना सर्वभूतहिताय जीवन यापन करने वाले लोगों को श्रद्धा से भगवान् का दर्जा दिया गया है। महावीर स्वामी, गौतम बुद्ध आदि के बाद महात्मा पदवी से राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी को अलंकृत किया गया है। यद्यपि इनका पूरा नाम मोहनदास करमचन्द गाँधी था, पर आज सारा विश्व इन्हें महात्मा गाँधी, गाँधी और बापू के नाम से ही स्मरण करता है।

श्री मोहनदास करमचन्द गाँधी (महात्मा गाँधी का पूरा नाम) का जन्म काठियावाड़ (गुजरात) के पोरबन्दर नामक स्थान में हुआ था। इनके पिता करमचन्द गाँधी पोरबन्दर राज्य के दीवान थे। इनकी माता पुतलीबाई एक धार्मिक गृहिणी थीं। महात्मा गाँधी के ऊपर अपनी माता के संस्कारों

का गहरा प्रभाव था। वर्णाश्रम संस्कार उनमें कूट-कूटकर वचपन में ही भर दिये गये थे। संस्कारों में बँधे होने पर भी गाँधी का मन देश की दुर्दशा से छटपटाता रहता था। एक पीड़ा उन्हें अन्दर ही अन्दर व्याकुल किये रहती थी। १३ वर्ष की अल्पावस्था में कस्तूरवा बाई के साथ इनका विवाह हुआ। मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद पिता ने उन्हें बैरिस्टर बनने हेतु लन्दन भेज दिया। बैरिस्टर बनकर भारत लौटने पर बम्बई तथा राजकोट में वकालत करने लगे। इसी दौरान एक भारतीय फर्म के मुकदमे के सिलसिले में उन्हें दक्षिण अफ्रीका जाना पड़ा। वहाँ पर काली चमड़ी वाले अफ्रीकियों और भारतीयों के प्रति गोरी चमड़ी वाले अंग्रेजों के अत्याचार को देखकर इनका मन विद्रोही हो उठा और इन्होंने स्वतन्त्रता के अधिकार का बिगुल वहीं बजा दिया। इनके सतत संघर्ष और तर्कों के आगे अंग्रेज सरकार को झुकना पड़ा और वहाँ के भारतीयों तथा अफ्रीकियों को अंग्रेजों के अत्याचार से मुक्ति मिली। इस संघर्ष में महात्मा गाँधी ने मानव-सेवा और सत्याग्रह को अपना अस्त्र बनाया। उन्होंने हिंसा का मार्ग त्याग अहिंसा को अपनाया। अफ्रीका के संघर्ष से गाँधीजी को आत्मबल और आत्मविश्वास प्राप्त हुआ। उन्होंने यह संघर्ष भारतवर्ष में भी करने का निश्चय कर लिया।

गाँधीजी जब भारतवर्ष अफ्रीका से वापस आये तो उस समय भारत में भी अंग्रेजों से मुक्ति हेतु स्वतंत्रता आन्दोलन छिड़ा हुआ था। लोकमान्य तिलक के नेतृत्व में यहाँ स्वतन्त्रता आन्दोलन चल रहा था। गाँधीजी उसमें शामिल हो गये। इससे पूर्व आन्दोलन का रुख हिंसात्मक था। गाँधीजी ने इसे अहिंसा और सत्याग्रह के मार्ग पर मोड़ दिया। उन्होंने पूरे देश की यात्रा कर देश की जनता को एकता के सूत्र में पिरो दिया। पूरे देश में स्वाधिकार की माँग ने जोर पकड़ लिया। प्रारम्भ में स्वतन्त्रता का तात्पर्य केवल मानवाधिकार की प्राप्ति तक ही सीमित था। इस बीच प्रथम महायुद्ध प्रारम्भ हो गया। गाँधीजी ने भारतीयों को अंग्रेजों की मदद करने के लिए प्रेरित किया। उन्हें विश्वास था कि भारतीयों की सेवा के बदले अंग्रेज उन्हें मानवाधिकार सौंप देंगे, पर अंग्रेजों ने बदले में अत्याचारों में और वृद्धि कर दी। रोलट एक्ट जैसे काले कानून से भारतीयों का दमन करना शुरू कर दिया।

अब महात्मा गाँधी ने आन्दोलन को और उग्र कर दिया। अब मानवाधिकार की जगह पूर्ण स्वराज्य ने ले ली। असहयोग और स्वदेशी का आन्दो-

लन इतना उग्र रूप लिया कि अंग्रेजों को इसके आगे झुकना ही पड़ा। अन्ततः १५ अगस्त सन् उन्नीस सौ सैंतालिस को अंग्रेजों ने भारत को स्वतन्त्र देश घोषित कर भारतीयों को सत्ता सौंप दी। भारत में प्रथम बार भारतीयों की अपनी सरकार बनी। इस संघर्ष में महात्मा गाँधी को बार-बार लाठी-डण्डों और अनेक यातनाओं को सहना पड़ा। पर सामूहिक एकता ने उन्हें आत्मबल प्रदान किया। अत्याचारों को सहन करने की शक्ति प्रदान की।

प्रकृति का विधान दो भागों में विभक्त है—सत्प्रवृत्ति और असत्प्रवृत्ति। सत्प्रवृत्ति जहाँ अपना मार्ग नहीं बदलती, असत्प्रवृत्ति अपना मार्ग अवसर देख बदल लिया करती है। अंग्रेजों ने जाते-जाते यहाँ के दो सशक्त धर्मावलम्बियों को आपस में लड़ा दिया।-हिन्दू और मुसलमानों के बीच राष्ट्र के बँटवारे का झगड़ा खड़ा कर दिया। दोनों मतावलम्बी एक-दूसरे के खून के प्यासे हो गये। गाँधीजी ने बड़ी सूझ-बूझ के साथ इस झगड़े को निबटाने का प्रयास किया। पर यह झगड़ा और नफरत मिट न सका। स्वयं गाँधीजी ही इस नफरत की आग में शहीद हो गये। ३० जनवरी १९४८ की एक शाम नाथूराम गोडसे नामक एक भारतीय ने मुसलमानों का पक्ष लेने के कारण बिड़ला मन्दिर में प्रार्थना-सभा से बाहर आते ही रिवाल्वर की गोली से गाँधीजी की हत्या कर दी।

महात्मा गाँधी अपने प्रयास में सफल रहे। उनका संकल्प पूरा हुआ और सर्वधर्मसमन्वय का एक नया दर्शन प्रकाश में आया। इस दर्शन को गाँधीवाद का नाम दिया गया। उनकी कल्पना थी कि भारतीय साम्राज्य का आधार वैरविहीन रामराज्य हो। पर उनकी मृत्यु के पश्चात् देशवासियों ने शनैः-शनैः इसकी उपयोगिता को भुला दिया। गाँधी के उत्तराधिकारी पण्डित जवाहर लाल नेहरू ने इस सपने को पूरा करने का संकल्प लिया। पर वे महात्मा गाँधी न बन सके। सत्ता-प्राप्ति के बाद भारतीय समाज पुनः दलों में बिखर गया और कुर्सी-दौड़ का युग शुरू हो गया। परिणाम सबके सामने है। स्वदेशी शासन-पद्धति का लोप हो गया और विदेशी फार्मूला आयातित हो गया। आज भारतीय स्वन्तत्र होकर भी स्वतन्त्र नहीं है। सारे देश में कुर्सी-दौड़ के दानव ने अपना पैर पसार लिया है।

महात्मा गाँधी आज हमारे बीच नहीं हैं, परन्तु उनका दर्शन विद्यमान है। आवश्यकता है—उसका ईमानदारी के साथ पालन करने की। लेकिन सत्ता

हथियाने के लोभ ने गांधी और गांधी-दर्शन को महज एक नारा (आदर्श वाक्य) बना दिया है, जिसे हम दीवारों पर सजा सकते हैं। जिसे हम केवल जनता से वोट प्राप्त कर सत्ता की कुर्सी तक पहुंचने के लिए हथियार बना लिये हैं। स्वार्थलिप्सा ने हमें अन्धा कर दिया है। पर गांधी की प्रासंगिकता में कोई कमी नहीं आयी है। देश को पुन: विदेशियों के चंगुल में जाने से बचाने के लिए किसी गांधी की महती आवश्यकता है। असंख्य नेताओं वाला यह देश अब भी गांधी-विहीन अपनी दुर्दशा पर किसी अवतारी महात्मा के आगमन की प्रतीक्षा में कराह रहा है। देश को प्रतीक्षा है—राम, कृष्ण और बुद्ध के प्रतिनिधि गांधी के लौट आने की।

(३) विज्ञान और मानव-जीवन

अथवा

विज्ञान के चमत्कार

अथवा

विज्ञान की भूमिका

अथवा

वैज्ञानिक आविष्कारों की उपयोगिता

मानव चेतन प्राणी है। चेतना का अर्थ है—कर्त्तव्याकर्त्तव्य, ग्राह्याग्राह्य की तात्विक विवेचन-शक्ति। जब से मानव की सृष्टि हुयी है, मानव ने सदा चिन्तन किया है और इस चिन्तन को मानवोपयोगी स्वरूप प्रदान किया है। यह चिन्तन ही विज्ञान है। विज्ञान शब्द की निष्पत्ति 'वि' उपसर्गपूर्वक 'ज्ञान' शब्द से हुयी है। यहां 'वि' उपसर्ग का प्रयोग 'विशेष' अर्थ में ग्रहण किया गया है। इस प्रकार किसी विषय-वस्तु का विशेष रूप से ज्ञान प्राप्त कर लेना ही विज्ञान है। विज्ञान-सिद्धि हेतु अनुसन्धान और आविष्कार की आवश्यकता होती है। अनुसन्धान भी एक यौगिक शब्द है, जो 'अनु' उपसर्गपूर्वक सन्धान शब्द के योग से बना है। अनु का अर्थ है—बार-बार और सन्धान का अर्थ है—प्रयोग और परिणाम का विवेचन। आविष्कार अनुसन्धान का परिणाम है।

आदिमकाल से ही मानव अपने जीवन को अधिकाधिक सुखी व सरल बनाने हेतु इस प्रकार का अनुसन्धान करता आया है। वेद मानव-अनुसन्धान के प्रमाण हैं। वेदों में इस मानवीय प्रवृत्ति का पूर्ण परिचय मिलता है। वे

हमारे लिए आज भी अनुसन्धान के स्रोत बने हुए हैं। यही उनकी प्रासंगिकता का रहस्य है। मानव ने अनुसन्धान हेतु मानव-जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं को—(१) भोजन, (२) आवास, (३) यातायात, (४) चिकित्सा, (५) सुरक्षा तथा (६) मनोरञ्जन आदि वर्गों में विभक्त कर रखा है। पूर्ण सुख की उपलब्धि को ही मोक्ष माना गया है। कालान्तर में मोक्ष को पूर्ण सुख से ऊपर की वस्तु मानकर इसे स्वर्ग का नाम दे दिया गया। आज का युग विज्ञान का युग कहा जाता है। आज का मानव प्रातः आँख खोलने से लेकर रात को आँखें बन्द करने तक का काल विज्ञान के विभिन्न आविष्कारों का सुख लूटने में बिताता है। विज्ञान आज साधन मात्र न होकर मानव का आराध्य बन चुका है। विज्ञान के बिना मानव-जीवन की कल्पना ही बेमानी हो गयी है। इसकी महत्ता का अध्ययन संक्षेप में मानव-जीवन की कुछ मूल आवश्यकताओं के सन्दर्भ में इस प्रकार किया जा सकता है—

भोजन—शरीर एक यन्त्र है, जिसे कार्य करने के लिए शक्ति की आवश्यकता होती है। जिस प्रकार कोई भी यन्त्र बिना पावर के कार्य नहीं करता, उसी प्रकार शरीर को भी शक्ति चाहिए। यह शक्ति उसे भोजन से मिलती है। आज मानव-जनसंख्या इतनी अधिक बढ़ चुकी है कि उसके लिए भोजन जुटाना एक समस्या बन चुकी है। विज्ञान ने इस समस्या का हल ढूंढने में मनुष्य की भरपूर सहायता की है। भोजन के लिए अन्न, दूध, फल और मांस-अण्डे आदि चाहिए। विज्ञान ने इनके बड़े पैमाने पर उत्पादन हेतु तरह-तरह की मशीनों, रसायनों, औषधियों और तरीकों का आविष्कार किया है। परिणामतः जो देश विज्ञान के इन आविष्कारों का उपयोग कर रहे हैं, वे विकसित, सुखी और समृद्ध देश माने जाते हैं। अन्न-उत्पादन हेतु कृषि-उपयोगी विभिन्न यन्त्रों का निर्माण, रासायनिक खादों का निर्माण, कीटनाशक दवाओं का निर्माण, भण्डारघरों का निर्माण आदि इस विज्ञान की ही देन है। इसके सदुपयोग से विश्व के भोजन की समस्या का बहुत कुछ समाधान हो चुका है। अभी और इस दिशा में अनुसन्धान जारी है। विज्ञान के सहारे वह दिन दूर नहीं जब मानव भूखमरी की समस्या को पूर्ण समाप्त कर सकेगा।

आवास—प्राचीन काल में जनसंख्या कम थी और मनुष्य पर्वत-कन्दराओं, पेड़ों की डाल या खुले आसमान के नीचे ही रह लेता था। लेकिन उसकी अनुसन्धित्सा ने उसे जंगलों से उठा कर भवन में रहने के योग्य बना दिया।

आज का मानव भवन-निर्माण में विज्ञान के सहारे आत्मनिर्भर हो सका है। इस क्षेत्र में भी विज्ञान ने अनेक वरदान मानव को प्रदान किये हैं। न केवल भवन-निर्माण कला का विकास वैज्ञानिक रीति से हुआ है अपितु भवन में आवास हेतु बिस्तर, रोशनी, दवा, पानी, इंधन आदि के क्षेत्र में भी विज्ञान ने मानव को पर्याप्त सहायता दी है। विद्युत् के बल्व व ट्यूब, पंखे, कूलर, फ्रीज, चूल्हे, मिक्सी आदि आज दैनिक उपयोग की चीजें हो चुकी हैं, जिनके बिना मनुष्य अपने को सुखी नहीं मानता।

चिकित्सा—एक समय था जब मनुष्य बीमार होता था और मर जाता था। पर अनुसन्धित्सा ने उसे बीमारी से लड़ने की शक्ति दी। उसने पहले प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग से बीमारी से लड़ने का प्रयास किया। इसमें उसे कुछ सफलता मिली। इस अनुसन्धित्सा (विज्ञान) ने आज मानव को इस मोड़ पर ला दिया है कि वह किसी भी प्रकार के रोग से लड़ने को तैयार है। विज्ञान के सहारे तरह-तरह की चिकित्सा-विधियों, यन्त्रों, दवाओं आदि का निर्माण सम्भव हुआ है। आधुनिक चिकित्सा-पद्धति इतनी विकसित हो चुकी है कि बिना कष्ट के ही बड़ा से बड़ा आपरेशन आसानी से हो जाता है। अब कोई रोग असाध्य नहीं रह गया है। हैजा, प्लेग, चेचक, मलेरिया, टी० बी० (क्षय), कैंसर जैसे जानलेवा रोग भी अब असाध्य नहीं रह गये हैं। अंग-प्रत्यारोपण और परखनली-शिशु के आविष्कार ने मानव को पुनर्जन्म प्रदान किया है।

शिक्षा—शिक्षा को जन-जन तक सरलतया व सुगमतया पहुँचाने में भी अनुसन्धित्सा ने अपना महत्त्वपूर्ण योगदान किया है। रेडियो-शिक्षण और टेलीविजन-शिक्षण ने शिक्षा में क्रान्ति ला दी है। अब स्कूलों में आठ-दस घण्टे बैठकर किताबों में सर खपाने की अपेक्षा कहीं भी बैठे हुए, काम करते हुए अपने ज्ञान में वृद्धि की जा सकती है। इस तरह अब अधिक श्रम-दिवसों की सर्जना सम्भव हो सका है, जिससे उत्पादनक्षमता में वृद्धि हुयी है। रेडियो और टेलीविजन ने अपने विविध प्रोग्रामों से लोगों में जागृति पैदा कर दी है। वह दिन दिन दूर नहीं जब एक भी मनुष्य अशिक्षित नहीं रहेगा। मुद्रण-कला व मुद्रण के मशीनों तथा कागज-उत्पादन उद्योग ने अखबारों, पुस्तकों को घर-घर तक पहुँचा दिया है।

यातायात एवं दूरसंचार—एक जमाने में मनुष्य को एक स्थान से दूसरे

स्थान तक जाने के लिए अपने पैरों को ही कष्ट देना पड़ता था। वह केवल थलमार्ग पर ही चल सकता था। जल और आकाश उसके लिए अगम्य थे। तब इनमें गमन की बात भी नहीं सोच सकता था। लेकिन आज स्थिति बिलकुल भिन्न है। आज मानव तरह-तरह के पोतों और विमानों, उपग्रहों के माध्यम से कम-से-कम समय में आराम से यात्रा कर सकता है। उसकी यात्रा अब जल के नीचे सुतल, तलातल से लेकर गगन में चन्द्र, मंगल और अन्य ग्रहों तक सम्भव हो गयी है। रेल, मोटर, कार, साइकिल, आटोरिक्सा, स्कूटर से लेकर हेलीकाप्टर और उपग्रह तक यातायात के साधन विज्ञान की ही देन हैं। अब मनुष्य अपने शरीर के अंगों को तकलीफ दिये बिना ही जल, थल, नभ कहीं भी जा सकता है। टेलीफोन-प्रणाली इतनी विकसित हो चुकी है कि जल, थल और नभ कहीं भी कम-से-कम समय में आसानी से सन्देश-प्रेषण सम्भव हो गया है।

उद्योग-धन्धे—पूर्वोक्त सुविधाओं को बड़े पैमाने पर सर्वजनसुलभ बनाने हेतु अनेक उद्योगों एवं मशीनों का विज्ञान ने आविष्कार किया है। इन मशीनों के उपयोग से मनुष्य अधिक से अधिक उत्पादन-संरक्षण और विपणन करने में समर्थ हुआ है। प्राकृतिक संसाधनों के शोषण के साथ उनके रूपान्तर और संवर्द्धन एवं संरक्षण में भी सफल हुआ है। कृषि, यातायात, दूरसंचार, चिकित्सा, शिक्षा आदि की आवश्यक पूर्ति हेतु अनेकानेक कारखानों की स्थापना हुयी है।

सुरक्षा—आज का मनुष्य नख-दन्तावम्बी युग से चलकर परमाणु बम, राकेट, मिसाइल आदि विकसित अस्त्र-शस्त्र तक पहुँच गया है। अब उसे मानवेतर प्राणी से भय नहीं, मानव से ही भय है। उसने जहाँ अपनी सुरक्षा के उपाय किये हैं वहीं शत्रु पर आक्रमण के भी अत्याधुनिक संहारक उपाय खोज निकाले हैं। इसलिए अब एक देश दूसरे देश से भय खाता है। उसने शस्त्रास्त्र के विकास की बात करना छोड़ उनके परिसीमन की दिशा में, कदम बढ़ाना प्रारम्भ कर दिया है। परमाणु-सन्धि इस बात का प्रमाण है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आज मानव-जीवन पूर्णरूपेण विज्ञान से प्रभावित है। विज्ञान ने मानव की सुख-सुविधा हेतु अनेक संसाधन जुटाये हैं। रेडियो, चल-चित्र, वीडियो, टेलीविजन आदि ने मनोरञ्जन को सर्वजनसुलभ बना दिया है। विश्व में कहीं भी होने वाले खेलों या सांस्कृतिक नृत्य-गीत-

अभिनयादि समारोहों का आँखोंदेखा हाल या टी० वी० प्रसारण द्वारा आनन्द घर बैठे उठाया जा सकता है। परन्तु जहाँ विज्ञान मानव-जीवन के लिए वरदान सिद्ध हुआ है, वहीं इसका दुरुपयोग भयंकर अभिशाप भी सिद्ध हुआ है। अनुसन्धित्सा एक विद्या है, जिसके सत् और असत् दो पहलू हैं। सत्पक्ष जहाँ सुख देता है, असत्पक्ष दुःखदायी बन जाता है। अब यह मनुष्य के अपने हाथों में है कि वह किसे चुनता है। विज्ञान के वरदानों और अभिशापों का विस्तृत विवेचन कर पाना सम्भव नहीं है। मनुष्य के लिए यही उचित है कि वह विज्ञान को साधन मात्र रहने दे, साध्य न बनाये। तभी मानव-हित में विज्ञान सार्थक सिद्ध होगा।

(४) गंगा-प्रदूषण

गंगा भारत की सबसे बड़ी नदी और उत्तर भारत के लिए दैवी वरदान है। उत्तर भारत के मैदानों को सस्यश्यामला बनाने में युग-युग से गंगा का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। भारतीय आर्य-संस्कृति के विकास-क्रम में गंगा का अभूतपूर्व योगदान रहा है। गंगा विष्णु के चरणों से निकली है। भगवान् शिव के मस्तक पर रहती है। वह सगरसुतों का उद्धार करने हेतु लोकपावनि, त्रैतापननशावनि, अघओघविनाशिनि रूप में भगीरथ के रथ के पीछे-पीछे चल कर महासागर से जा मिली है।

गंगा नदी हिमालय की उपत्यका गंगोत्री (गोमुख) से निकल कर पर्वत-श्रृंखला में सहस्रधारा, अलकनन्दा, मन्दाकिनि आदि नामों से बहती हुयी उत्तरप्रदेश के हरिद्वार में यह मैदानी भाग में प्रविष्ट होती है। यहाँ से यह विभिन्न नगरों, गाँवों और बस्तियों को अपने जाल से पवित्र करती हुयी १७०० किलोमीटर की यात्रा कर पश्चिम बंगाल में गंगासागर में जाकर हिन्द-महासागर में समा जाती है। इसके किनारे पर कानपुर, इलाहाबाद, वाराणसी, पटना और कलकत्ता महानगर बसे हुए हैं। गंगा नदी में यमुना, सरयू, घाघरा, गण्डक आदि अनेक छोटी-बड़ी नदियों का जल आकर मिल जाता है। छोटे-बड़े नाले भी आकर मिलते हैं।

आधुनिक भौतिकवादी युग में गंगा अघनाशिनी न होकर स्वयं अघ-दायिनी बन गयी। अर्थपिपासु मानव ने गंगा को प्रदूषित व कलुषित कर दिया है। जब मनुष्य को यह ज्ञात हुआ कि गंगा में स्वतः मलशोधनक्षमता

विद्यमान है तो वह इसके दुरुपयोग से जरा भी नहीं हिचकिचाया। अपना मलमूत्र और कारखानों का कचरा व विष नालों के माध्यम से गंगा में ही पहुँचाने लगा। जो गंगाजल पहले कीटाणु रहित निर्मल व पवित्र रहता था, वह अब अनेक चर्मरोगों को जन्म देने वाला और प्राणघातक बन चुका है। अधजले मुर्दे व बिना जले मवेशियों के शव भी इस प्रदूषण को बढ़ावा देते हैं। जल-जन्तुओं के शिकार से भी जलशोधन में बाधा पहुँची है। मोटरबोटों व जहाजों के धुँए के साथ निकला हुआ तेल व गैस भी गंगाजल को दूषित करता है।

सरकार का ध्यान सर्वप्रथम स्व० श्री राजीव गाँधी के प्रधानमन्त्रित्व काल में इस ओर गया। सरकारी तौर पर हरिद्वार, प्रयाग, काशी, पटना और कलकत्ता में गंगाजल का नमूना लेकर उसका वैज्ञानिक विश्लेषण कराया गया। इसका परिणाम चौंकाने वाला था। सरकार ने तत्काल इस प्रदूषण को समाप्त करने हेतु प्रभावी कदम उठाये। सबसे पहले वाराणसी को चुना गया। वाराणसी एक धार्मिक स्थल है। यहाँ गंगा-स्नान व पूजन हेतु हजारों लोग देश-विदेश से आते हैं। वे गंगाजल को पवित्र मान कर स्नान और पान करते हैं और प्रदूषित जल के प्रभाव से अनजाने ही बीमारियों के शिकार हो जाते हैं। गंगाजल के प्रदूषण को रोकने हेतु दस करोड़ रुपये की एक गंगा-कार्ययोजना (प्रदूषण-नियन्त्रण योजना) तैयार की गयी। इस योजना के अन्तर्गत गंगा नदी के तट पर गिरने वाले नालों के जल को फिल्टर प्रणाली से छान कर शुद्ध करके गंगाजल में गिराया गया। इस कार्य हेतु जगह-जगह फिल्टर पम्प स्टेशन बनाये गये। गंगाघाटों के सुधार व सुन्दरीकरण पर भी ध्यान दिया गया।

वाराणसी के बाद प्रयाग और हरिद्वार में भी गंगाप्रदूषण-मुक्तियोजना चलायी गयी। लेकिन केवल सरकार के प्रयास से यह प्रदूषण समाप्त नहीं हो सकता है, जब तक देश की जनता न चाहे। अतः सरकार ने इसके लिए भी कुछ प्रभावी कदम उठाये। गंगा में कचरा गिरानेवाले कारखानों, उद्योगों को बन्द कर दिया गया या स्थानान्तरित कर दिया गया। गंगा में साबुन लगाने वालों को दण्डित किया गया। गंगाघाट पर लोग मल-मूत्र त्याग न करें, इस हेतु जगह-जगह पर सुलभ शौचालय व काम्प्लेक्स बनवाये गये। गंगा में जल-जन्तुओं के शिकार पर रोक लगायी। लोगों में गंगा को स्वच्छ रखने हेतु

चेतना जगाने के लिए अनेक सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित किये गये। शव-दाह हेतु जनता की सुविधा के अनुसार घाटों पर विद्युत् शवदाहगृह बनवाये गये। बिना पूर्ण रूप से जले शवों को गंगा में प्रवाहित करने पर रोक लगायी गयी।

इस प्रकार श्री राजीव गाँधी की सरकार ने देश की पवित्र नदी की पवित्रता को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए अनेक प्रयास किये, किन्तु उनकी सरकार के चले जाने के बाद आने वाली सरकारों ने इस योजना को महज कागजी एवं अखबारी योजना बना दिया। कभी धन की कमी का रोना रोया तो कुछ अन्य बहाना। वादा करना और उसे अमल में लाना दो अलग बातें हैं। कथनी और करनी में एकसमान रहने वाले नेता बहुत कम पैदा होते हैं। गंगाप्रदूषण-योजना भी आज सरकार को मुँह चिढ़ा रही है। धनाभाव के कारण बिगड़े हुए शवदाहगृह स्वयं मृत पड़े किसी शवदाहगृह की प्रतीक्षा कर रहे हैं। फिल्टर स्टेशनों का भी यही हाल है। उधर स्वार्थी जनों ने अपना रास्ता अलग बना लिया है। वे अपना कचरा उधर गिराते हैं जो सरकारी प्रतिबन्ध से दूर है।

सब कुछ होते हुए भी यह निर्विवाद सत्य है कि गंगाप्रदूषण-मुक्तियोजना एक लाभकारी योजना है। इसमें अनेक लाभ भी हुए हैं। देश की जनता को चाहिए कि इस पुनीत कार्य को सरकार के भरोसे न छोड़कर स्वैच्छिक संस्थाओं के माध्यम से बड़े पैमाने पर पूरा करे। न केवल गंगा अपितु देश की सभी नदियों को प्रदूषण से मुक्त रखे। गंगा तो देवनदी है। भारत जैसे धर्मप्रिय देश में गंगा का प्रदूषित होना देवताओं का अपमान करना है। फिर गंगा लोगों की प्राणदात्री है। इसका जल अनेक शहरों के करोड़ों लोगों को पानी की टंकियों के माध्यम से पीने को सुलभ होता है। खेतों में सिंचाई के काम आता है। विद्युत्-उत्पादन के काम आता है। अनेक जलजीवों की शरणस्थली है। प्रकृति का देश को वरदान है। अतः इसकी रक्षा करना प्रत्येक देशवासी का पुनीत कर्त्तव्य है।

(५) बेकारी और शिक्षा

भारत जैसे विशाल जनसंख्या वाले देश में बेकारी, गरीबी, भूखमरी आदि गम्भीर समस्याओं का सिर उठाना स्वभाविक है। इन सभी समस्याओं में

बेकारी की समस्या विकराल है। बेकारी के कारण ही लोग भूखमरी के शिकार होते हैं, अपराध में प्रवृत्त होते हैं, गरीब होते हैं। सबके मूल में बेकारी की समस्या है। भारत में यह समस्या अंग्रेजी शासन की देन मानी जाती है। अंग्रेजों ने देश को गुलाम फौजी ताकत से कम बौद्धिक ताकत से अधिक बनाया। उन्होंने भारतीयों को कमजोर करने के लिए घरेलू उद्योगों को कल-कारखानों के जरिए ध्वस्त कर दिया। उद्योग-धन्धों के बन्द होने से लाखों की संख्या में लोग बेकार हो गये। भारत का मुख्य उद्योग सदा से कृषि रहा है। उन्होंने कृषि पर भी हमला किया और मजदूरों की जगह मशीनों का प्रयोग करना सिखाया। जहाँ एक काम को करने में हजारों मजदूर कई दिन लगाते थे, वह काम एक मशीन कुछ ही घण्टों में कर दिखाती थी। इस प्रकार मशीनीकरण ने भी बेकारी की समस्या को बढ़ावा दिया।

कहने को तो कहा जा सकता है कि इससे देश का आर्थिक विकास हुआ है, पर परिणाम में बेकारी का उपहार भी मिला है। मशीनीकरण ने मानव को इस तरह अपना गुलाम बना लिया कि अब हाथों से कोई काम नहीं लेना चाहता। विकास के नाम पर हर काम मशीनों से लिया जाने लगा है। कुआँ खोदना है तो मशीन चाहिए। खेत जोतना है तो मशीन चाहिए। फसल काटना है तो मशीन चाहिए। मड़ाई करना है तो मशीन चाहिए। कहने का तात्पर्य यह है कि अब मानव के हाथों के लिए कोई काम नहीं। वह क्या करेगा? तब वह पेट भरने के लिए कोई भी दुष्कर्म करने को तत्पर हो जायेगा।

सरकार ने इस समस्या से निबटने का भरपूर प्रयास किया है। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् गरीबी उन्मूलन हेतु अनेक कदम उठाये गये हैं। हर हाथ को काम देने के लिए अनेक योजनाएँ सरकार की ओर से चलायी गयी हैं, जिनका प्रत्यक्ष लाभ भी देखने को मिला है। गाँवों में कुटीर उद्योगों की स्थापना हेतु सरकार की ओर से ट्राइसेन योजना के तहत विभिन्न उद्योगों के प्रशिक्षण एवं उनकी स्थापना हेतु समुचित साधन तथा धन ऋण के रूप में उपलब्ध कराया गया। शहरों में स्थापित उद्योगों का विकेन्द्रीकरण करके ग्रामीण अंचलों में कुटीर उद्योगों एवं लघु उद्योग से सामञ्जस्य सम्बन्ध स्थापित किया जा रहा है। स्वतः रोजगार-योजना के माध्यम से भी बेकारी को खत्म करने का प्रयास जारी है।

पर इनसे बेकारी की समस्या का निदान पाना तब तक सम्भव नहीं जब तक बेकारी के जनक कारणों का निदान न हो जाय। बेकारी का सबसे बड़ा कारण है अशिक्षा। दोषपूर्ण अर्थव्यवस्था और बढ़ती हुई जनसंख्या गौण कारण हैं। आज देश में शिक्षा का घोर अकाल है। विद्यालय हैं तो अध्यापक नहीं। विद्यालय और अध्यापक हैं तो समुचित साधन नहीं। पाठ्यक्रम भी ऐसे कि सैकड़ों वर्षों से उन्हें संशोधित नहीं किया गया। संशोधित पाठ्यक्रम समुचित साधन के अभाव में लागू नहीं हो पाते। अतः देश की जनता को समुचित शिक्षा का लाभ नहीं मिल पाता। साधनसम्पन्न विद्यालयों में सीमित साधनों के कारण सीमित संख्या में प्रवेश पाने से केवल कुछ ही छात्र समुचित रोजगारोन्मुख शिक्षा का लाभ उठा पाते हैं। सरकार ने इस दिशा में भी कदम उठाये हैं। जहाँ शिक्षा-पाठ्यक्रम को अधिकाधिक व्यवसायपरक बनाया गया वहीं ओपेन स्कूल या मुक्त विद्यालय की शिक्षा-प्रणाली भी लागू कर दी है। रेडियो और टेलीविजन के माध्यम से ऐसे कार्यक्रमों का प्रसारण किया जा रहा है जिनसे युवक स्वतः रोजगार का प्रशिक्षण आसानी से प्राप्त कर सकें।

दोषपूर्ण आर्थिक व्यवस्था में अपेक्षित सुधार लाने हेतु बीससूत्रीय कार्यक्रम के तहत उद्योग-धन्धों को शहरी क्षेत्र से हटाकर ग्रामीण अंचल में ले जा रही है, जिससे क्षेत्रीय लोगों को अधिक रोजगार मिल सके। लघु उद्योग एवं कुटीर उद्योगों को बढ़ावा दिया जा रहा है। जनसंख्या पर नियन्त्रण हेतु भी सरकार प्रयत्नशील है। इसके लिए जनचेतना-जागरण और प्रोत्साहन का प्रयोग किया जा रहा है। विद्यालयों की आर्थिक दशा सुधार कर उन्हें समुचित साधन प्रदान किये जा रहे हैं। नकल की प्रवृत्ति को रोकने के लिए ठोस कदम उठाये जा रहे हैं, जिससे सुयोग्य छात्र बनें। इनमें योग्यतानुसार रोजगार करने की क्षमता हो। इन सब सुधारों को देखते हुए कहा जा सकता है कि सरकार बेकारी की समस्या को समूल उखाड़ फेंकने को कृत संकल्प है। यह कार्य शिक्षा के माध्यम से ही सम्भव है, अतः सरकार का ध्यान शिक्षा पर विशेष रूप से केन्द्रित है।

(६) देश-प्रेम

(राष्ट्रभक्ति/राष्ट्रशक्ति)

'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी'

संस्कृत भाषा की यह सूक्ति विश्व के हर देशवासी के लिए गौरव एवं गर्व

का विषय है। भारत जैसे संस्कृति एवं संस्कृत के उपासक देश के लिए यह अभिमान की बात है। अपने देश के आन-बान और शान में अपने प्राण को हँसते-हँसते न्यौछावर करने वाले वीर ही समाज में पूजित हुए हैं। देश की जनता उन्हीं का इतिहास याद करती है और आदर के साथ नित्य उन्हें नमन करती है। कवि मैथिलीशरण गुप्त ने कहा है—

जिसको नहीं निज देश का, निज जाति का अभिमान है।
वह नर नहीं, नर-पशु नहीं, वह निरा मृतक समान है॥

समाज में रहने वाले हर व्यक्ति का जिस प्रकार अपने कुटुम्ब के प्रति दायित्व होता है, कर्तव्य होते हैं, उसी प्रकार देश के प्रति भी। देश कुटुम्बों एवं समाजों का समूह या कुटुम्ब है। देश की मिट्टी, हवा, जल सबके उपयोग के लिए सुलभ हैं। इनका मूल्य देशवासी को इसकी रक्षा के द्वारा चुकाना पड़ता है। जो इसे नहीं चुकाता, उसका जीना जीना नहीं। सबसे अधिक श्रद्धेय संसार में दो ही तो हैं। एक जन्मदात्री माता और दूसरा देश की धरती।

व्यक्ति और समाज का विकास देश का विकास है। सुख-समृद्धि देश के सम्पूर्ण रूप से विकसित होने पर ही सम्भव है। यह कार्य तभी सम्भव है जब प्रत्येक नागरिक जागरूक हो, देश की रक्षा में तन-मन-धन सब कुछ न्यौछावर करने को तैयार रहे। जब कुछ लोग केवल अपना स्वार्थ-साधन हेतु प्रयत्नशील होंगे तो दूसरे से टकराव होना जरूरी है और ऐसे में तीसरे को लाभ मिलना भी निश्चित ही है। हमारा इतिहास इस बात का साक्षी है कि यदि विभीषण अपमानित होकर राम के दल में आकर न मिलता तो राम के लिए लंका पर विजय पाना मुश्किल होता। अगर जयचन्द ने प्रतिशोध की आग में जलकर विदेशी आक्रामकों को निमन्त्रण न दिया होता तो भारतवर्ष गुलामी की बेड़ी में न बँधता। अगर मीर जाफर ने गद्दारी न की होती तो मुगल-साम्राज्य का अंग्रेजों के हाथों खात्मा न होता। इन सब घटनाओं के पीछे व्यक्तिपरक स्वार्थ निहित था।

परन्तु हमारा इतिहास गौरवमय वीरों के बलिदान का इतिहास है। हर युग में ऐसे सपूत हुए हैं जिन्होंने नाना प्रकार के शारीरिक व मानसिक यातनाओं को हँसते-हँसते देश की गौरव-रक्षा के लिए सहा है। महाराणा प्रताप ने देश को आजाद कराने हेतु आजीवन संघर्ष किया। वीर शिवाजी ने

विदेशियों की सत्ता को उखाड़ फेंकने के लिए संघर्ष किया। राजपूत वंश और मराठा वंश का इतिहास देश व मातृभूमि की आन-बान और शान के लिए मर मिटने वालों से भरा है। प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम देशभक्तों ने ही लड़ा था। महात्मा गाँधी और लोकमान्य तिलक के नेतृत्व में स्वाधीनता का आन्दोलन लड़ने वाले सेनानी भी देशभक्त ही थे। इन सभी सेनानियों के जीवन में एक ही बात समान रूप से पायी जाती है, वह है अपने देशवासियों एवं अपने देश की धरती के हित के लिए अपने स्वार्थ को त्याग कर कार्य करना। ये सभी सन्त थे। सन्त का लक्षण गोस्वामी तुलसीदास ने इस प्रकार किया है।

'निज दुःख देखि द्रवइ नवनीता। परदुःख द्रवइ सो सन्त पुनीता ।।'

देश-प्रेम को प्रगट करने का एकमात्र साधन युद्धभूमि में जाकर मर-मिटना या कोई आन्दोलन चलाना ही नहीं है। देशभक्ति किसी भी क्षेत्र में प्रकट की जा सकती है। स्वामी विवेकानन्द ने भारतीय ज्ञान की ज्योति को विदेशों तक पहुँचा दी। यह भी उनकी देश-सेवा ही थी। मैथिलीशरण गुप्त, रामधारी सिंह दिनकर, मुन्शी प्रेमचन्द आदि ने लेखनी के द्वारा देशवासियों को देश-सेवा में नियोजित किया, यह भी देश-प्रेम ही था। सबके हित के लिए निःस्वार्थ भाव से की गयी सेवा ही देश-सेवा है। यही सच्ची आराधना है। जो व्यक्ति देश की चिन्ता करता है, अपनी चिन्ता त्याग देता है, उसकी चिन्ता स्वयं परमपिता करता है और वह उसी की मदद करता है।

कोई भी देश तब तक उन्नति नहीं कर सकता जब तक उस देश में रहने वाले सभी लोग एकजुट हो, सच्चे मन से निष्काम भाव से देश की सेवा में न लग जायें। इसे ही राष्ट्रीय एकता भी कहा जा सकता है। जब सभी देशवासी अपने करोड़ों हाथों को उठाकर एक शक्ति से कार्य करने में जुट जायेंगे तो बड़े-से-बड़े पर्वत को हिला देंगे, समुद्र को सुखा सकते हैं। उनके सामने छोटी-मोटी समस्याएँ कोई अर्थ नहीं रखतीं। निष्कर्ष यह है कि मनुष्य को अपने देश की उन्नति के लिए सदा प्रयत्नशील रहना चाहिए। देश की धरती, आकाश और समुद्र, पर्वत, वृक्ष, जीव-जन्तु सभी उसकी अपनी अस्मिता की पहचान हैं। इनकी रक्षा, संवर्धन में सतत जागरूक रहना चाहिए। यह देश-भक्ति या राष्ट्र-भक्ति ही राष्ट्र की शक्ति है। शक्ति के बिना विकास सम्भव नहीं है। शक्ति ही जीवन है। इस शक्ति को बनाये रखना हमारा पुनीत कर्त्तव्य है।

(७) नारीमुक्ति-आन्दोलन

भारतवर्ष में नारी को शक्ति के रूप में जगदम्बा के रूप में पूजा जाता है। वह एक साथ अनेक दायित्व को निभाती हुयी संसार का सृजन व पालन करती है, दुष्टता का संहार करती है। शक्ति के तीन स्वरूप कहे गये हैं— महालक्ष्मी, महासरस्वती और महाकाली। महालक्ष्मी के रूप में वह संसार का सृजन व पालन करती है। महासरस्वती के रूप में वह ज्ञान (चेतना) को जगाती है और महाकाली रूप में वह दुष्टता का दमन करती है। वैदिक काल में नारी को सहधर्मिणी का सम्मान प्राप्त था। वह पुरुष के क़दम-से-क़दम मिलाकर चल सकती थी। पुरुष नारी का सम्मान करता था। उस काल में सर्वमान्य विश्वास था कि— 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः'।

पर वैदिक युग के समापन तक नारी की स्थिति में बदलाव आ गया। नारी और पुरुष के बीच लक्ष्मण-रेखा खिंच गयी। नारी 'असूर्यम्पश्या' बनती चली गयी। धर्मभीरुता ने नारी को अन्धा बना दिया। पातिव्रत धर्म के अतिरेक ने उसे स्वयं ही पुरुष की दासी बनने पर मजबूर कर दिया। उसने स्वेच्छा से पुरुष की सेवा का व्रत लिया। अपनी महत्त्वाकांक्षाओं की बलि चढ़ा दी। पुरुष को वह अपना आश्रय मान बैठी। मोह ने उसकी आद्याशक्ति को सुला दिया। यहीं से नारी का पतन प्रारम्भ होता है।

आर्ययुग के समापन पर नारी का स्थान भोग्या मात्र रह गया। वह पुरुष के मनोरञ्जन का साधन मात्र बनकर रह गयी। उससे समस्त अधिकार छीन लिये गये। वह शो-रूम में अलंकारों से सजी मूरत के समान हो गयी, जिसे देखकर जी बहलाया जा सकता है। वह पुरुष पर पूर्णरूपेण आश्रित हो गयी। धर्म, जाति, प्रतिष्ठा और ऐश्वर्य आदि ने नारी को अपने चंगुल व जाल में इस तरह जकड़ लिया कि उसने कूप-मण्डूक जैसी अपनी स्थिति बना ली। पुरुष ने उसके त्याग व समर्पण भावना को उसकी शक्तिहीनता समझा और उसका नाजायज फायदा उठाते हुए स्वयं में झूठे अहंकार को महत्ता दे दी। उसने नारी पर अत्याचार करना शुरू कर दिया। धर्म, जाति, प्रतिष्ठा और मर्यादा के बन्धन में जकड़ी नारी चुपचाप इसे सहती गयी। वह मरे पति के साथ स्वर्ग में साथ निभाने हेतु जिन्दा आग में जलने को सहर्ष तैयार हो गयी।

अंग्रेजी शासनकाल तक यह स्थिति यथावत् बनी रही। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् नारी ने पुनः अपनी खोयी हुयी अस्मिता को प्राप्त करने के लिए

संघर्ष शुरू कर दिया है। उनका यह आन्दोलन पूर्णरूपेण अहिंसात्मक है। विध्वंसात्मक नहीं रचनात्मक है। आज नारी ने अपनी शक्ति का प्रदर्शन व्यवसाय, शिक्षा, राजनीति, कला, खेल, वीरता आदि क्षेत्रों में किया है। उसने बतला दिया है कि उसमें पुरुष से जरा भी कम शक्ति नहीं। वह अर्धांगिनी नहीं सहचारिणी है। उसकी भी पुरुष के समान महत्त्वाकांक्षाएं हैं, जिन्हें वह अपने बलबूते पर पूरा कर सकती है।

अब सवाल उठता है—नारीमुक्ति-आन्दोलन के सार्थकता व भविष्य का। क्या नारी को पुरुष के मदद की कोई आवश्यकता नहीं? क्या वह पूर्ण स्वतन्त्रत होना चाहती है? पूर्ण स्वतन्त्र होकर नारीत्व का निर्वाह वह कर पायेगी? वह किस सीमा तक स्वतन्त्रता चाहती है? ये कुछ ऐसे प्रश्न हैं जिनका उत्तर देना स्वयं नारी के लिए भी दुष्कर है। इसमें सन्देह नहीं कि पुरुष ने नारी को बहुत सताया है। उसे उसका अधिकार मिलना ही चाहिए। समाज में उसकी महत्त्वाकांक्षाओं, उसके सपनों का आदर होना ही चाहिए। परन्तु यह स्वातन्त्र्य किस आधार पर हो, यह विचारणीय है। आधुनिका नारी जिस तरह पश्चिमी सभ्यता का अन्धाधुन्ध अनुकरण ही अपना आदर्श बना रही है, उसका परिणाम भी सामने आने लगा है। आज की नारी ने पुरुष को एक किनारे खड़ा कर दिया है। उसने कुटुम्ब के बन्धन को भी दासता समझ तोड़ने का मन बना लिया है। अब वह मातृत्व के बोझ को अनावश्यक समझती है।

वर्तमान नारीमुक्ति के आन्दोलन का भविष्य अन्धकार में भटका हुआ दिशाहीन है। समय का झोंका इसे किधर ले जायेगा, यह स्वयं नारी भी नहीं बता सकती। पर इस स्वातन्त्र्य से यदि कुटुम्ब बिगड़ता है तो देश का सर्वनाश हो जायेगा। स्वातन्त्र्य आन्दोलन अच्छी चीज है। अपना स्वत्व बनाये रखने का सबको अधिकार है, पर देश सर्वोपरि है। देश और समाज के हित के लिए आत्महित का बलिदान करना पड़ता है। एक सुशिक्षित नारी ही सुशिक्षित समाज का निर्माण करने में समर्थ है, इसमें कोई सन्देह नहीं। पर शिक्षा पाश्चात्य की आयातित हो, यह तो आवश्यक नहीं। पाश्चात्य शिक्षा के सद्गुण तो ग्राह्य हैं पर दुर्गुण कदापि नहीं। आज की आधुनिका नारी प्रेम की आकांक्षा तो रखती है, पर केवल प्रेम के रूप में—दया या पूजा के रूप में नहीं। वह प्रेम को एक मनोरञ्जन या भावातिरेक की सीमा तक सीमित

रखना चाहती है। परिणामस्वरूप नारीमुक्ति-आन्दोलन जितना आगे बढ़ रहा है, नारी चहारदीवारी से जितनी तेजी से जितना ज्यादा मुक्त हो रही है, नवविवाहिताओं के जलने, मरने या आत्महत्याओं के आँकड़ें उससे कई गुना तेजी से बढ़ते जा रहे हैं। आज नारी अपने शक्ति के दम्भ में पुरुष के विपरीत छोर पर जा खड़ी हुयी है। एक-दूसरे से विपरीत छोर पर खड़े स्त्री और पुरुष एक-दूसरे को कुछ दे सकेंगे या कुछ पा सकेंगे, इसकी कल्पना करना आत्मप्रवंचना मात्र है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि नारीमुक्ति-आन्दोलन को सही दिशा-निर्देश की आवश्यकता है। नारी को नारायणी का दर्जा दिये बिना भारत देव-भूमि नहीं बन सकता। नारी नारायणी बनकर ही शिवा और सर्वार्थसाधिका बन सकती है।

(८) (अ) विद्यार्थी और राजनीति।
(ब) राष्ट्रीय चेतना और युवा-वर्ग।
(स) विद्यार्थी और अनुशासन।

बहुधा देखने में आ रहा है कि आजकल लड़के स्कूलों में पढ़ने जाते तो हैं, पर वे वहाँ विद्या-अध्ययन के स्थान पर अपना समय हड़ताल, तालाबन्दी और राजनेताओं के लिए जिन्दाबाद या मुर्दाबाद के नारे लगाने में बिताते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि बार-बार विद्यालय बन्द होते हैं। पाठ्य-क्रम सुचारु रूप से पूरा नहीं होता। परीक्षा-भवन में अवैध साधनों का प्रयोग होता है, गुरुजनों का अपमान होता है इत्यादि इत्यादि। राजनीति के नाम पर विद्यार्थी गुरु को सम्मान देना भूल चुका है। अनुशासन किताबों में पढ़ने की वस्तु बनकर रह गया है। ऐसे में कुछ प्रश्न स्वाभाविक रूप से उभर कर सामने आते हैं—क्या विद्यार्थी को राजनीति में सक्रिय रूप से भाग लेना उचित है ? राष्ट्रीय चेतना से युवावर्ग का कितना सम्बन्ध है ? और विद्यार्थी तथा अनुशासन का क्या सम्बन्ध है ? आदि। ये प्रश्न जितने सरल हैं, उतने ही इनका उत्तर देना कठिन है। विभिन्न विद्वानों ने इस विषय में अपने-अपने मत समय-समय पर प्रस्तुत किये हैं। कुछ विद्वान् विद्यार्थियों को राजनीति से अलग रहकर एक पाठ्य विषय के रूप में राजनीति का अध्ययन, मनन और चिन्तन की सलाह देते हैं तो कुछ विद्वान् उन्हें सक्रिय रूप से राजनीति में

भाग लेने को उचित बताते हुए प्रोत्साहन देते हैं। एक पक्ष विद्यार्थियों को कल (भविष्य) का नागरिक मानता है तो दूसरा उन्हें वर्तमान का नागरिक मानने का पक्षधर है।

'विद्यार्थी' शब्द यौगिक है। विद्या और अर्थिन् के समास से बना हुआ है, जिसका अर्थ है—विद्या को प्राप्त करने की इच्छा रखने वाला। राजनीति भी एक विद्या है, जिसका सम्यक्तया ज्ञान प्राप्त करना वर्तमान युग में विद्यार्थी के लिए परमावश्यक है। इस हेतु इसका प्रायोगिक ज्ञान बिना सक्रिय भागीदारी के सम्भव नहीं। पर यह राजनीतिक भागीदारी आयु के अनुसार मर्यादित रूप से स्कूल की चहारदीवारी के भीतर भी सम्भव है। स्कूल के बाहर सड़क की राजनीति स्कूल से शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् ही उचित मानी गयी है। यह पक्ष राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी का है। उनके अनुसार—'विद्यार्थी के दलगत राजनीति में पड़ने से काम नहीं चल सकता। जैसे वे सब प्रकार की पुस्तकें पढ़ते हैं, वैसे ही सब दलों के नेताओं की बातों को सुन सकते हैं, विचारों पर मनन कर सकते हैं। परन्तु उनका काम यह है कि सबकी सच्चाई को हजम करें और बाकी को फेंक दें। यही एकमात्र उचित रवैया है जिसे वे अपना सकते हैं। सत्ता की राजनीति विद्यार्थी के लिए अपरिचित होनी चाहिए। वे ज्यों ही इस प्रकार के काम में पड़ेंगे, त्यों ही विद्यार्थी के पद से च्युत हो जायेंगे और देश के संकटकाल में उसकी सेवा में असफल होंगे।' इसी प्रकार और भी विद्वान् हैं जो विद्यार्थियों का राजनीति में सक्रिय रूप से भाग लेना उचित नहीं मानते। उनका तर्क है कि नवयुवा पीढ़ी में होश (चेतना) की अपेक्षा जोश (कुछ कर दिखाने का उत्साह) अधिक होता है और बिना होश का जोश समाज और राष्ट्र के अस्तित्व को जलाकर राख कर देने वाला होता है।

इसमें सन्देह नहीं कि विद्यार्थी ही राष्ट्र के निर्माता हैं, कर्णधार हैं। देश का भविष्य छात्रों के ऊपर निर्भर करता है। यदि छात्र अनुशासनप्रिय, परिश्रमी, बुद्धिमान् और क्रियाशील होंगे तो वह राष्ट्र सदा उन्नति करता रहेगा। राष्ट्र का उत्थान और पतन छात्रों पर ही निर्भर करता है। छात्रशक्ति राष्ट्रशक्ति का नारा यों ही नहीं दिया गया है। पर छात्र को अनुशासन की सीमा का उल्लंघन कर राजनीति में सक्रिय भाग लेना उचित नहीं है। गाँधी-जी भी इसी बात के पक्षधर थे।

यह अनुशासन है—बड़ों का कहना मानना, उनका तन-मन से आदर करना और उनकी आज्ञा का अक्षरशः पालन करना। परन्तु आजकल इसका सर्वत्र अभाव दीख रहा है। स्वतन्त्रता की लहर ने विद्यार्थी-वर्ग को अनुशासन से मुक्त कर रखा है। वे गुरुजनों का सम्मान करना नहीं जानते। विद्यालय की सम्पत्ति को बात-बात में नष्ट कर देना उनकी दृष्टि में कोई क्षति नहीं। गुरुओं के विरुद्ध मुर्दाबाद के नारे लगाना, उनकी खुली अवज्ञा करना, उन्हें भयभीत करना इनकी दृष्टि में अविनय नहीं है। इस अनुशासनहीनता के लिए शिक्षा-प्रणाली को दोषी ठहराया जाता है। पर वास्तविक दोष किसका है—शिक्षा-प्रणाली का, छात्र का, राजनेताओं का या समाज का? यह निश्चय कर पाना कठिन है। जो भी हो, इससे राष्ट्र की उन्नति नहीं ह्रास ही हो रहा है। वर्तमान समय में समग्र राष्ट्र जातिवाद, अलगाववाद, अगला-पिछड़ावाद की आग में धू-धू कर जल रहा है। छात्रसंघों का चुनाव व उद्घाटन राजनेता कर रहे हैं। वे छात्रों का प्रयोग देश में अस्थिरता पैदा कर सत्ताधारी दल को हटाकर स्वयं कुर्सी हथियाने के लिए कर रहे हैं। वे छात्रों की सभा में ऐसे जोशीले भाषण प्रस्तुत करते हैं कि अपरिपक्व बुद्धि के छात्र उनके प्रभाव में आकर सक्रिय रूप से विध्वंस पर तुल जाते हैं। सड़कजाम, चक्का-जाम, प्रदर्शन, हड़ताल आदि में अपना कीमती समय बर्बाद करने लगते हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि विद्यार्थियों ने देश को आजाद कराने में बड़े लोगों की अपेक्षा अधिक सक्रिय भूमिका निभायी है। सारा देश उनके कर्तव्य की सराहना करता है और उनका ऋणी है। पर वह भूमिका थी—राष्ट्रीय चेतना जागृत करने की, देश की जनता को स्वतन्त्रता संग्राम में शामिल होने के लिए शक्ति जुटाने की। स्वदेशी आन्दोलन में, चरखा-अभियान में, विदेशी वस्त्रों की होली जलाने में छात्रों ने गाँधीजी को पूरा सहयोग दिया। उनकी इस शक्ति की उपयोगिता आज भी है। राष्ट्रीय चेतना जगाने का कार्यक्षेत्र अभी भी अधूरा है। परिवार-नियोजन, अशिक्षा, बेकारी, पर्यावरण, स्वास्थ्य जैसे क्षेत्र अब भी छात्रशक्ति की बाट जोह रहे हैं। छात्र विद्याध्ययन के साथ अपने खाली समय में इन कामों को कर सकते हैं। लोगों के बीच जाकर अपनी तर्कनाशक्ति के सहारे, रचनात्मक शक्ति के सहारे उन्हें इन कामों को करने के लिए उत्साहित कर सकते हैं। महात्मा गाँधी ने सविनय अवज्ञा का जो मार्ग दिखलाया था, उस पर चलने से अनुशासन भी भंग नहीं होगा और

विद्यार्थियों की राजनीति में भाग लेने की मंशा भी पूरी हो जायेगी। कुर्सी की लड़ाई उन्हें स्कूल के बाहर के लोगों के लिए छोड़ देनी चाहिए। उन्हें तो अपने मन के अनुकूल भारत का निर्माण करना चाहिए, विध्वंस नहीं।

निष्कर्ष रूप में इतना ही कहा जा सकता है कि छात्रों को अनुशासन का पालन करते हुए पहले अपने राष्ट्रोपयोगी चरित्र का निर्माण करना चाहिए। स्वयं को शासन की बागडोर सँभालने योग्य बनाना चाहिए और अपने मनोनुकूल राष्ट्रीय समाज का निर्माण करना चाहिए। इसके लिए उन्हें राजनीति में सक्रिय रूप से भाग लेना चाहिए, पर किसी राजनेता के कहने से नहीं, अन्त:करण की प्रेरणा से प्रेरित होकर विवेक का दामन थामे हुए। अनुशासन व मर्यादा का पालन करते हुए रचनात्मक आन्दोलन में गुरुजन व बड़े लोग भी सहर्ष उनका साथ देंगे, इसमें सन्देह नहीं। स्वतन्त्रता संग्राम इसका प्रमाण है। छात्रों को स्वतंत्रता आन्दोलन से शिक्षा लेनी चाहिए।

(९) परहित सरिस धर्म नहिं भाई। परपीड़ा सम नहिं अधमाई॥

अथवा

परोपकार

परोपकार शब्द दो शब्दों का योग है—पर और उपकार। उसका अर्थ है— निष्काम भाव से दूसरों का कष्ट दूर करना, हितसाधन करना। स्वार्थ-साधन की मानव ने सर्वत्र निन्दा की है और परोपकार की प्रशंसा। स्वार्थ-साधन में लिप्त मनुष्य को पशु और अधम कहा गया है तथा परोपकारी को देवता। परोपकार से मनुष्य को आत्मसुख मिलता है, वह मर कर भी अमर हो जाता है। लोग उसकी कीर्ति को आदरपूर्वक गान करते रहते हैं। परोपकार अपने में दया, दान, दाक्षिण्य, सहानुभूति, सद्‌भावना, क्षमा आदि सद्‌गुणों को समाहित किये रहता है। परोपकारी को पर-उपकार के लिए कष्ट झेलनें में आनन्द मिलता है, अत्यधिक सन्तोष मिलता है। सज्जन और दुर्जन का अन्तर करते हुए गोस्वामी तुलसीदास का कथन है कि—

परहित सरिस धर्म नहिं भाई।
परपीडा सम नहिं अधमाई॥

परहित यानी परोपकार ही सच्चा मानव-धर्म है। यह संसार परोपकार

के बल पर टिका है। परोपकारी को अपने कार्य के बदले कुछ पाने की इच्छा नहीं होती। पौराणिक आख्यानों के द्वारा ज्ञात होता है कि भगवान् शेष समस्त ब्रह्माण्ड का बोझ अपने सिर पर परोपकार के लिए ही धारण करते हैं। पृथ्वी अपनी छाती पर समस्त दुनिया का भार भी परोपकार की भावना से ही करती है। सूर्य, चाँद, तारे, हवा, बादल आदि सभी परोपकार में रत हैं। सन्त कबीर ने भी उसका समर्थन करते हुए साधु (सज्जन) पुरुषों का जन्म परोपकार के लिए ही माना है। उनके अनुसार—

वृक्ष कबहुँ नहिं फल भखैं, नदी न संचै नीर।
परमारथ के कारनै, साधुन धरा सरीर॥

कविवर रहीम ने यही भाव निम्न प्रकार से प्रकट किया है—

तरुवर फल नहिं खात हैं, सरवर पियहिं न पान।
कहि रहीम परकाज हित, सम्पति संचहिं सुजान॥

हमारा इतिहास परोपकारियों की त्याग-गाथा से भरा है। राजा रन्तिदेव ने स्वयं भूख से व्याकुल होकर भी सामने परोसा हुआ भोजन का थाल उसी समय उपस्थित एक दूसरे भूखे व्यक्ति को दे दिया। महर्षि दधीचि ने देवासुर संग्राम में असुरों पर विजय हेतु देवताओं को प्रसन्नतापूर्वक अपनी अस्थियाँ दे दीं। महाराज शिवि ने एक कबूतर की प्राणरक्षा हेतु अपने शरीर का मांस अपने हाथों से काट कर दिया। हातिम और विक्रमादित्य के बारे में भी ऐसी अनेक कथाएँ प्रचलित हैं। भगवान् शिव और स्वामी दयानन्द ने समाज-कल्याण हेतु स्वयं विष का प्याला पी लिया। महात्मा गांधी ने भी देशहित के लिए ही आत्मबलि दी। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने उसी को सच्चे अर्थों में मनुष्य माना है जो मनुष्य के लिए आत्मबलिदान करे। उसी का जीवन सार्थक है—

'अहा ! वही उदार है, परोपकार जो करे।
वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिए मरे'॥

परोपकार की भावना मानव के हृदय में विश्व-प्रेम की भावना को जन्म देती है। सम्पूर्ण विश्व उसका अपना कुटुम्ब हो जाता है। पेड़-पौधे, पशु-पक्षी, नदी-पर्वत, झरने सब उसे अपने से लगते हैं। मानव-सेवा ही सच्ची ईश्वर की सेवा है। एक उर्दू के शायर ने तो परोपकारी को ही खुदा (ईश्वर) कहा है—

आदमी लाख सँभलने पै भी गिरता है मगर।
झुक के उसको जो उठा ले, वो खुदा होता है ॥

परोपकारी व्यक्ति का स्वभाव ही होता है कि वह दूसरों का दुःख देखकर स्वयं दुःखी हो जाता है। जब तक वह दुःखी का दुःख दूर न कर ले उसे चैन नहीं मिलता। राजकुमार सिद्धार्थ को कोई दुःख न था, पर संसार के दुःखी लोगों के दुःख का निस्तारण करने के लिए राजसुख, पत्नी और पुत्र का त्याग कर संन्यास ले लिया। भगवान् को भी परोपकार हेतु ही समय-समय पर अवतार लेना पड़ा है। गोस्वामी तुलसीदास ने परोपकारी के स्वभाव का निरूपण इस प्रकार किया है—

सन्त हृदय नवनीत समाना। कहा कविन्ह पै कही न जाना ॥
निज दुःख देखि द्रवइ नवनीता। परदुःख द्रवइ सो सन्त पुनीता ॥

आज के इस भौतिकवादी युग में अर्थ प्रधान हो गया है। सभी दुनिया भर की दौलत अपने पास बटोर लेने को आतुर है, दुनिया का सबसे बड़ा धनी व्यक्ति कहलाना चाहता है। इस स्वार्थपूर्ति हेतु वह नैतिकता को ताक पर सजा कर पूजा हेतु रख देता है। परिणाम सर्वत्र युद्ध एवं संघर्ष की काली घटा छायी हुयी है। ऐसे समय में लोगों के बीच परोपकार की भावना का प्रसार करना समय-सापेक्ष है। परोपकार के जरिये ही विश्वशान्ति की स्थापना सम्भव है। देश के अन्दर और बाहर सर्वत्र परोपकार से ही मैत्री और स्थिरता की स्थापना हो सकती है।

(१०) बाढ़ का आँखों देखा वर्णन

सावन शुक्लपक्ष का महीना। आकाश में अचानक बादल घिर आये। मेघ ने गर्जना के साथ जो झड़ी लगाई वह थमने का नाम ही नहीं ले रही थी। दिन और रात का अन्तर करना कठिन हो गया था। लगातार तीन दिनों तक सूर्य की किरणों के दर्शन को लोग तरस गये। बीच-बीच में कच्चे व पुराने घरों का धड़ाम की आवाज के साथ गिरना और घर वालों की सहायतार्थ चीख-पुकार हृदय को दहला देने वाली थी। बाहर-भीतर सब ओर पानी ही पानी था। वर्षा का जोर पाकर गंगा ने भी जोर पकड़ा। किनारों को लाँघ कर गाँव की ओर मुहल्लों की गलियों में हिलोरे भरना आरम्भ कर दिया। सामान्य जन-जीवन भय से आक्रान्त हो गया। खेतों में खड़ी फसलें

डूब क्या गयी किसानों की समस्त आशाओं एवं परिश्रम को पानी ने निगल लिया। लोग बाग घरों की गृहस्थी का मोह त्याग पेड़ों की डालों और ऊँचे टीलों की शरण लेने लगे। सड़कें, नहरें, बाँध सभी जलप्लावन की चपेट में आकर ध्वस्त हो गये, जिससे बाढ़ का प्रकोप और अधिक बढ़ गया था। समुद्र का प्रत्यक्ष दर्शन न करने वालों के लिए यह दृश्य महासागर-दर्शन जैसा ही था। सैकड़ों गाँव पानी में या तो बह गये था डूब चुके थे। नगर के निचले हिस्सों की भी यही स्थिति थी। जैसे ही वर्षा कुछ थमी, समाजसेवी संस्थाओं और सरकार की ओर से राहत कार्य की व्यवस्था प्रारम्भ हो गयी। नाविकों की नावें बाढ़-प्रभावित क्षेत्रों के नागरिकों को सुरक्षित स्थानों में पहुँचाने लगीं। समाजसेवी संस्थाएँ उनके लिए भोजन के पैकेट एवं दवाएँ वितरण करने लगीं।

बाढ़ का दृश्य भयंकर होने के साथ लुभावना भी लग रहा था। हवा के साथ गरजती, लरजती, नाचती लहरों का दृश्य मनोहारी था। पानी में बहते लकड़ी के ठूंठ पर एक साथ डूबने से बचने के लिए आदमी और सर्प सहारा लिये हुए दीख पड़े। आपस का वैरभाव भूलकर जीवमात्र की मैत्री का यह दृश्य अद्भुत तो था ही, एक चिरन्तन सत्य का दर्शन भी था। हजारों की संख्या में लोगों ने इस दृश्य को देखा, पर भय व कातरता के कारण निरीह से देखकर रह गये। गंगा की उफनती लहरों का सामना करने का साहस किसी में न हुआ।

बाढ़राहत-कार्य में सरकार ने सेना के साथ ही स्कूलों और कालेजों तथा विश्वविद्यालयों की मदद ली। शिक्षासंस्थाएँ राहत-शिविर में बदल गयीं। छात्रों की टोलियाँ राष्ट्रीय सेवा-योजना के तहत अन्य साधनों के साथ सहायता कार्य में जुट गयीं। इनका कार्य समाजसेवी संस्थाओं एवं सरकार की सहायता करना था। छात्र पूरे उत्साह के साथ दस-दस की टोलियों में राहत-सामग्री लेकर शिविरों तक जाते थे। वहाँ बाढ़ की पीड़ा से सहमे बच्चों, बूढ़ों, किसानों और व्यापारियों के चेहरे पर छायी मायूसी को देखकर हृदय द्रवित हो उठता था। उनकी खेती, उनका घर-बार तो नष्ट हो ही चुका था, पशु आदि भी पानी की भेंट चढ़ चुके थे। तम्बुओं में निवास करते हुए उनके चेहरों पर खुशी नहीं थी।

बाढ़ का पानी धीरे-धीरे उतरने लगा, पर लोगों को अपने घरों में लौटने

के लिए महीनों प्रतीक्षा करनी पड़ी। सरकार और समाजसेवी संस्थाओं ने जी खोलकर उनके पुनर्वास हेतु दान-अनुदान दिये। पर उजड़े गांवों व बिछड़े स्वजनों को वापस लाना असम्भव था। यह पीड़ा उनके हृदय को कितने समय तक टीसती रहेगी, अनुमान लगाना कठिन था। बाढ़ का यह रूप अत्यन्त हृदयद्रावक था। बाढ़ से प्रतिवर्ष करोड़ों की क्षति होती है। सरकार ने बाढ़ से होने वाली क्षति को रोकने के लिए अनेक योजनाएँ बनायी हैं, लेकिन उन योजनाओं के पूर्ण होने तक प्रतिवर्ष कितने जन-धन की क्षति होगी, इस वर्ष के बाढ़ के दृश्य को देखकर अनुमान लगाना कठिन नहीं है।

बाढ़ से जहाँ इतनी अधिक हानियाँ होती हैं, वहीं कुछ लाभ भी होते हैं। खेतों को नयी उपजाऊ मिट्टी की परत मिल जाती है। गन्दगी और कूड़ा-करकट को बाढ़ का पानी बहा ले जाता है। लेकिन ये लाभ हानि के आगे नगण्य हैं। सरकार ने बाढ़ के वेग को रोकने के लिए ऊँची सड़कों, बाँधों और नहरों का निर्माण कराना प्रारम्भ कर दिया है। नदियों को गहरा कर जल संग्रहण क्षमता को बढ़ाया गया है। नदियों का रूख भी मोड़ने का प्रयास किया जा रहा है, जिससे बाढ़ से कम-से-कम क्षति हो। इसका सुपरिणाम भी धीरे-धीरे सामने आने लगा है। सन् ७७-७८ की बाढ़ के बाद भयंकर विनाश-लीला सुनने को कम ही मिलती है। पर इस वर्ष की बाढ़ भी कम विनाश-कारी नहीं थी।

पूर्व मध्यमा द्वितीय वर्ष

अनिवार्य हिन्दी : तृतीय पत्र

द्वितीय भाग

लघु प्रश्न तथा उत्तर

प्रश्न १— गद्य साहित्य के इतिहास पर प्रकाश डालिए?

उत्तर— गद्य साहित्य का इतिहास— रीतिकाल के अवसान के बाद सं० १९०० वि० से गद्य साहित्य प्रारम्भ हुआ। इस गद्य साहित्य का प्रथम सूत्रपात लल्लू लाल, सदल मिश्र, मुंशी सदा सुखलाल तथा ईंशा अल्ला खाँ की लेखनी द्वारा हुआ, जिसे हम गद्य साहित्य की शैशवावस्था कह सकते हैं।

तत्पश्चात् गद्य-साहित्य धीरे-धीरे अपनी शैशवावस्था को पार कर राजा शिव प्रसाद 'सितारे हिन्द' तथा राजा लक्ष्मण सिंह के हाथों में पड़ा।

हिन्दी-साहित्य की प्रगति के साथ-साथ हिन्दी साहित्य का भविष्य उज्ज्वल दिखाई देने लगा और उसके कर्णधार बने-भारतेन्दु हरिश्चन्द्र।

हिन्दी-साहित्य की प्रगति एवं विकास दोनों साथ-साथ हुआ। इस प्रकार आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी तथा आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के हाथों में पड़ कर हिन्दी साहित्य का भविष्य चमक उठा।

हिन्दी का गद्य-साहित्य नाटक, निबन्ध, कहानी तथा आलोचना अनेक विधाओं में विकसित होने लगा एवं वर्तमान समय में भी विकसित हो रहा है।

प्रश्न २— निबन्ध के उद्भव तथा विकास पर प्रकाश डालिए।

उत्तर— निबन्ध का उद्भव तथा विकास— गद्य साहित्य की प्रमुख विधाओं में निबन्ध एक प्रमुख विधा है इसके जन्मदाता भारतेन्दु हरिश्चन्द्र हैं।

निबन्ध के विकास को हृदयंगम करने के लिए सुविधा की दृष्टि से हम उसे ४ युगों में विभक्त कर सकते हैं—

१- भारतेन्दु युग, २- द्विवेदी युग

३- शुक्ल युग ४- शुक्लोत्तर युग

प्रश्न ३— भारतेन्दु युग के निबन्धकारो का वर्णन कीजिए।

उत्तर— भारतेन्दु युग के निबन्धकार— इस युग का प्रारम्भ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से माना जाता है। भारतेन्दु ज़ी स्वयं निबन्धकार थे। अत: उन्होंने एक मण्डल स्थापित किया, जो 'भारतेन्दु मण्डल' के नाम से प्रसिद्ध हुआ, जिसमें इनके समकालीन अनेक लेखक सम्मिलित थे। इन लेखकों मे बालकृष्ण भट्ट, प्रताप नारायण मिश्र, बदरीनारायण चौधरी, बाल मुकुन्द गुप्त तथा राधा चरण गोस्वामी मुख्य थे।

भारतेन्दु जी ने स्वयं निबन्ध लिखकर इन लेखकों को भी भिन्न-भिन्न विषयों पर निबन्ध लिखने के लिए प्रेरित किया।

भारतेन्दुकालीन लेखकों ने अपनी-अपनी रूचि के अनुसार अनेक निबन्धों की सृष्टि की।

इस युग में स्वयं भारतेन्दु तथा इनके मण्डल के लेखकों ने भिन्न-भिन्न पत्रिकाएँ भी प्रकाशित कीं, जिनमें इनके लेख प्रकाशित होते थे। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की पत्रिका का नाम 'हरिश्चन्द्र मैगजीन', बालकृष्ण भट्ट की पत्रिका का नाम 'प्रदीप' था तथा प्रताप नारायण मिश्र की पत्रिका का नाम 'ब्राह्मण' था।

भारतेन्दु युग निबन्ध की शैशवावस्था थी। अत: उसमें भाषा की सरसता नहीं थी, बल्कि ग्रामीणता तथा व्याकरण की अशुद्धियाँ अधिक थीं।

प्रश्न ४— द्विवेदी युग के निबन्धकारों का वर्णन कीजिए।

उत्तर— द्विवेदी युग के निबन्धकार— भारतेन्दु युग के पश्चात् द्विवेदी युग प्रारम्भ होता है। इसके प्रवर्तक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जी थे। इन्होंने विद्वान् लेखकों की एक मण्डली स्थापित की, जो 'द्विवेदी मण्डल' के नाम से विख्यात हुआ। इस मण्डल में आने वाले लेखकों में रामकृष्ण दास, पद्म सिंह शर्मा तथा श्याम सुन्दर दास मुख्य थे। द्विवेदी जी ने अनेक विषयों पर निबन्ध लिखकर अपने मण्डल के लेखकों को भी अनेक प्रकार की सुरुचिपूर्ण निबन्ध लिखने की प्रेरणा प्रदान की।

इन्होंने 'सरस्वती' नामक पत्रिका का भी सम्पादन किया, जिसमें वे स्वयं अपने निबन्ध तथा लेखकों के भी निबन्ध प्रकाशित करते थे।

द्विवेदी युग में भारतेन्दु युग की अनस्थिर शैली स्थिर हुई और भाषा व्याकरण के नियमों से आबद्ध होकर परिष्कृत हो गई।

प्रश्न ५— शुक्ल युग के निबन्धकारों का वर्णन कीजिए।

उत्तर— शुक्ल युग के निबन्धकार— आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी से

शुक्ल युग का प्रारम्भ होता है। यद्यपि ये द्विवेदी युग के ही निबन्धकार हैं, परन्तु इनके निबन्धों की विशिष्टता होने के कारण यह युग शुक्ल युग के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस युग में विषयों के वैविध्य के साथ-साथ निबन्ध की भाषा में भी प्रौढ़ता तथा गम्भीरता आई।

आचार्य शुक्ल जी से प्रेरित इस युग के प्रौढ़, निबन्धकारों में बाबू गुलाबराय, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, माखनलाल चतुर्वेदी, वियोगी हरि तथा डॉ० रघुबीर सिंह मुख्य हैं।

प्रश्न ६— शुक्लोत्तर युग (वर्तमान युग) के निबन्धकारों का वर्णन कीजिए?

उत्तर— शुक्लोत्तर युग या वर्तमान युग के निबन्धकार— आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के बाद शुक्लोत्तर युग का वर्तमान युग प्रारम्भ हुआ। इस युग में व्यक्तिनिष्ठ एवं ललित निबन्धों की विशेष रचना हुई और हो रही है। इस प्रकार के निबन्धकारों में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी मुख्य थे।

इस युग में इस परम्परा को चलाने वाले प्रौढ़ लेखकों में डॉ० विद्यानिवास मिश्र का नाम बड़े ही आदर के साथ लिया जाता है, जो अपने ललित निबन्धों के कारण विशेष प्रसिद्ध हैं।

प्रश्न ७— कहानी के उद्‍भव तथा विकास पर प्रकाश डालिए?

उत्तर— कहानी का उद्‍भव तथा विकास— गद्य साहित्य की प्रमुख विधाओं में कहानी भी एक प्रमुख विधा है। हिन्दी में कहानी का प्रारम्भ आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के युग से माना जाता है। यद्यपि इस युग के पूर्व भी कहानियाँ लिखी जा चुकी थीं, परन्तु उनमें साहित्यिकता का अभाव था।

इस युग के प्रसिद्ध कहानीकारों में किशोरीलाल गोस्वामी, जयशंकर प्रसाद, विश्वम्भर नाथ 'कौशिक', राधिकारमण सिंह, चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' तथा प्रेमचन्द मुख्य हैं।

हिन्दी कहानी के क्षेत्र में प्रेमचन्द्र का प्रवेश एक महत्वपूर्ण घटना है। इन्होंने अनेक कहानियाँ लिखकर अपने समकालीन लेखकों को एक नई दिशा दी, जिसका अनुकरण सुदर्शन तथा वृन्दावन इत्यादि अनेक लेखकों ने किया।

द्विवेदी युग के उपरान्त वर्तमान युग प्रारम्भ हुआ। यह युग कहानी की प्रगति की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण है। इस युग में अनेक कहानीकार हुए-भगवतीचरण वर्मा, यशपाल,द्विजेन्द्रनाथ मिश्र 'निर्गुण', शिवानी तथा शिवप्रसाद सिंह इत्यादि।

इस प्रकार कहानी साहित्य पल्लवित एवं पुष्पित हो रहा है।

तृतीय भाग

अति लघु प्रश्न तथा उत्तर

प्रश्न १— 'जबान' नामक निबन्ध के लेखक का नाम लिखिए?

उत्तर— 'जबान' नामक निबन्ध के लेखक श्री बालकृष्ण भट्ट हैं।

प्रश्न २— 'सच्ची वीरता' नामक निबन्ध के लेखक का नाम लिखिए?

उत्तर— 'सच्ची वीरता' नामक निबन्ध के लेखक श्री सरदार पूर्णसिंह हैं।

प्रश्न ३— 'क्रोध' नामक निबन्ध के लेखक का नाम लिखिए?

उत्तर— 'क्रोध' नामक निबन्ध के लेखक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी हैं।

प्रश्न ४— 'कुसंग और सत्संग' नामक निबन्ध किस निबन्धकार की कृति है?

उत्तर— 'कुसंग और सत्संग' नामक निबन्ध आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की कृति है।

प्रश्न ५— 'कर्त्तव्य और सत्यता' नामक निबन्ध किस निबन्धकार की कृति है?

उत्तर— 'कर्त्तव्य और सत्यता नामक निबन्ध डॉ० श्यामसुन्दरदास की कृति है।

प्रश्न ६— 'शिक्षा का उद्देश्य' नामक निबन्ध किस निबन्धकार की कृति है?

उत्तर— 'शिक्षा का उद्देश्य' नामक निबन्ध डॉ० सम्पूर्णानन्द की कृति है?

प्रश्न ७— 'गिल्लू' नामक निबन्ध किस निबन्धकार की कृति है?

उत्तर— 'गिल्लू' नामक निबन्ध श्रीमती महादेवी वर्मा की कृति है?

प्रश्न ८— 'जमुना के तीरे–तीरे' नामक निबन्ध किस निबन्धकार की कृति है?

उत्तर— 'जमुना के तीरे–तीरे' नामक निबन्ध विद्यानिवास मिश्र की कृति है।

प्रश्न ९— 'बादलों की छाँव तले' नामक निबन्ध किस निबन्धकार की कृति है?

उत्तर— 'बादलों की छाँव तले' नामक निबन्ध डॉ० श्रीप्रसाद की कृति है?

प्रश्न १०— निम्नलिखित लेखकों में 'जबान' नामक निबन्ध किस निबन्धकार की कृति है—

बालकृष्ण भट्ट, महावीर प्रसाद द्विवेदी, रामचन्द्र शुक्ल

उत्तर— 'जबान' नामक निबन्ध श्री बालकृष्ण भट्ट की कृति है।

प्रश्न ११— निम्नलिखित लेखकों में 'सच्ची वीरता' नामक निबन्ध किस निबन्धकार की कृति है—

रामचन्द्र शुक्ल, सरदार पूर्णसिंह, महावीर प्रसाद द्विवेदी

उत्तर— 'सच्ची वीरता' नामक निबन्ध श्री सरदार पूर्णसिंह की कृति है।

प्रश्न १२— निम्नलिखित लेखकों में 'क्रोध' नामक निबन्ध किस निबन्धकार की कृति है—

सरदार पूर्ण सिंह, महावीर प्रसाद द्विवेदी, रामचन्द्र शुक्ल

उत्तर— 'क्रोध' नामक निबन्ध आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की कृति है।

प्रश्न १३— निम्नलिखित लेखकों में 'कुसंग और सत्संग' नामक निबन्ध किस निबन्धकार की कृति है—

महावीर प्रसाद द्विवेदी, रामचन्द्र शुक्ल, श्यामसुन्दर दास

उत्तर— 'कुसंग और सत्संग' नामक निबन्ध आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की कृति है।

प्रश्न १४— निम्नलिखित लेखकों में 'कर्त्तव्य' और सत्यता नामक निबन्ध किस निबन्धकार की कृति है—

श्यामसुन्दरदास, महावीर प्रसाद द्विवेदी, रामचन्द्र शुक्ल

उत्तर— 'कर्त्तव्य और सत्यता नामक निबन्ध डॉ० श्यामसुन्दरदास की कृति है।

प्रश्न १५— निम्नलिखित लेखकों में 'शिक्षा का उद्देश्य' नामक निबन्ध किस निबन्धकार की कृति है—

महावीर प्रसाद द्विवेदी, रामचन्द्र शुक्ल, सम्पूर्णानन्द

उत्तर— 'शिक्षा का उद्देश्य' नामक निबन्ध डॉ० सम्पूर्णानन्द की कृति है?

प्रश्न १६— निम्नलिखित लेखकों में 'गिल्लू' नामक निबन्ध किस निबन्धकार की कृति है—

महादेवी वर्मा, महावीर प्रसाद द्विवेदी, श्यामसुन्दर दास

उत्तर— 'गिल्लू' नामक निबन्ध श्रीमती महादेवी वर्मा की कृति है?

प्रश्न १७— निम्नलिखित लेखकों में 'जमुना के तीरे-तीरे' नामक निबन्ध किस निबन्धकार की कृति है—

रामचन्द्र शुक्ल, महावीर प्रसाद द्विवेदी, विद्यानिवास मिश्र

उत्तर— 'जमुना के तीरे—तीरे' नामक निबन्ध विद्यानिवास मिश्र की कृति है।

प्रश्न १८— निम्नलिखित लेखकों में 'बादलों की छाँव तले' नामक निबन्ध किस निबन्धकार की कृति है—

विद्यानिवास मिश्र, सम्पूर्णानन्द, श्रीप्रसाद

उत्तर— 'बादलों की छाँव तले' नामक निबन्ध डॉ० श्रीप्रसाद की कृति है?

प्रश्न १९— 'परीक्षा' नामक कहानी के लेखक का नाम लिखिए?

उत्तर— 'परीक्षा नामक कहानी के लेखक का नाम श्री प्रेमचन्द है।

प्रश्न २०— 'मुगलों ने सल्तनत बख्श दी' नामक कहानी के लेखक का नाम लिखिए?

उत्तर— 'मुगलों ने सल्तनत बख्श दी' नामक कहानी के लेखक का नाम श्री भगवती चरण वर्मा है।

प्रश्न २१— 'देशभक्त' नामक कहानी के लेखक का नाम लिखिए?

उत्तर— 'देशभक्त' नामक कहानी के लेखक का नाम श्री बेचन शर्मा 'उग्र' है।

प्रश्न २२— 'मिठाई वाला' नामक कहानी के लेखक का नाम लिखिए?

उत्तर— 'मिठाई वाला' नामक कहानी के लेखक का नाम श्री भगवती प्रसाद वाजपेयी है।

प्रश्न २३— 'पढ़ाई' नामक कहानी के लेखक का नाम लिखिए?

उत्तर— 'पढ़ाई' नामक कहानी के लेखक का नाम श्री जैनेन्द्र कुमार है।

प्रश्न २४— 'चार आने' नामक कहानी के लेखक का नाम लिखिए?

उत्तर— 'चार आने' नामक कहानी के लेखक का नाम श्री यशपाल है।

प्रश्न २५— 'सती' नामक कहानी किस कहानीकार की कृति है?

उत्तर— 'सती' नामक कहानी श्रीमती शिवानी की कृति है।

प्रश्न २६— 'ठेस' नामक कहानी किस कहानीकार की कृति है?

उत्तर— 'ठेस' नामक कहानी श्री फणीश्वरनाथ 'रेणु' की कृति है।

प्रश्न २७— 'रस बूँद' नामक कहानी किस कहानीकार की कृति है?

उत्तर— 'रस बूँद' नामक कहानी श्री द्विजेन्द्रनाथ मिश्र 'निर्गुण' की कृति है।

प्रश्न २८— 'अँधेरा' नामक कहानी किस कहानीकार की कृति है?

उत्तर— 'अँधेरा' नामक कहानी डॉ० श्री प्रसाद की कृति है।

प्रश्न २९— 'परीक्षा' नामक कहानी के लेखक का नाम लिखिए?

उत्तर— 'परीक्षा नामक कहानी श्री प्रेमचन्द की कृति है।

प्रश्न ३०— निम्नलिखित लेखकों में 'मुगलों ने सल्तनत बख्श दी' नामक कहानी के लेखक का नाम लिखिए—

प्रेमचन्द, भगवती चरण वर्मा, भगवती प्रसाद वाजपेयी

उत्तर— 'मुगलों ने सल्तनत बख्श दी' नामक कहानी श्री भगवती चरण वर्मा की कृति हैं।

प्रश्न ३१— निम्नलिखित लेखकों में 'देशभक्त' नामक कहानी किस कहानीकार की कृति है—

बेचन शर्मा 'उग्र', भगवती चरण वर्मा, जैनेन्द्र कुमार

उत्तर— 'देशभक्त' नामक कहानी श्री बेचन शर्मा 'उग्र' की कृति है।

प्रश्न ३२— निम्नलिखित लेखकों में 'मिठाई वाला' नामक कहानी किस कहानीकार की कृति है—

भगवती प्रसाद वाजपेयी, भगवती चरण वर्मा, जैनेन्द्र कुमार

उत्तर— 'मिठाई वाला' नामक कहानी श्री भगवती प्रसाद वाजपेयी की कृति है।

प्रश्न ३३— निम्नलिखित लेखकों में 'पढ़ाई' नामक कहानी किस कहानीकार की कृति है—

भगवती चरण वर्मा, जैनेन्द्र कुमार, बेचन शर्मा 'उग्र'

उत्तर— 'पढ़ाई' नामक कहानी श्री जैनेन्द्र कुमार की कृति है।

प्रश्न ३४— निम्नलिखित लेखकों में 'चार आने' नामक कहानी किस कहानीकार की कृति है—

भगवतीचरण वर्मा, भगवती प्रसाद वाजपेयी, यशपाल

उत्तर— 'चार आने' नामक कहानी श्री यशपाल की कृति है।

प्रश्न ३५— निम्नलिखित लेखकों में 'सती' नामक कहानी किस कहानीकार की कृति है—

शिवानी, भगवती चरण वर्मा, बेचन शर्मा 'उग्र'

उत्तर— 'सती' नामक कहानी श्रीमती शिवानी की कृति है।

प्रश्न ३६— निम्नलिखित लेखकों में 'ठेस' नामक कहानी किस कहानीकार की कृति है—

भगवती प्रसाद वाजपेयी, फणीन्द्र नाथ 'रेणु', शिवानी

उत्तर— 'ठेस' नामक कहानी श्री फणीश्वरनाथ 'रेणु' की कृति है।

प्रश्न ३७— निम्नलिखित लेखकों में 'रस बूँद' नामक कहानी किस कहानीकार की कृति है—

द्विजेन्द्र नाथ मिश्र 'निर्गुण', भगवती प्रसाद वाजपेयी, जैनेन्द्र

उत्तर— 'रस बूँद' नामक कहानी श्री द्विजेन्द्रनाथ मिश्र 'निर्गुण' की कृति है।

प्रश्न ३८— निम्नलिखित लेखकों में 'अँधेरा' नामक कहानी किस कहानीकार की कृति है— श्रीप्रसाद, द्विजेन्द्र नाथ मिश्र, भगवती प्रसाद वाजपेयी

उत्तर— 'अँधेरा' नामक कहानी डॉ० श्री प्रसाद की कृति है।

प्रश्न ३९— द्विवेदी युग के किसी एक प्रसिद्ध निबन्धकार का नाम लिखिए?

उत्तर— द्विवेदी युग के प्रसिद्ध निबन्धकार का नाम डॉ० श्यामसुन्दर दास है।

प्रश्न ४०— शुक्ल युग के किसी एक प्रसिद्ध निबन्धकार का नाम लिखिए?

उत्तर— शुक्ल युग के प्रसिद्ध एक निबन्धकार का नाम डॉ० रघुवीर सिंह हैं।

प्रश्न ४१— वर्तमान युग के किसी एक प्रसिद्ध निबन्धकार का नाम लिखिए?

उत्तर— वर्तमान युग के प्रसिद्ध निबन्धकार का नाम डॉ० विद्यानिवास मिश्र है।

प्रश्न ४२— द्विवेदी युग के किसी एक प्रसिद्ध कहानीकार का नाम लिखिए?

उत्तर— द्विवेदी युग के प्रसिद्ध कहानीकार का नाम श्री प्रेमचन्द है।

प्रश्न ४३— वर्तमान युग के प्रसिद्ध एक कहानीकार का नाम लिखिए?

उत्तर— वर्तमान युग के प्रसिद्ध कहानीकार का नाम श्री द्विजेन्द्रनाथ मिश्र 'निर्गुण' है।

मनोरमा-रत्नविमर्शः । केशवदेव तिवारी । (१-२ भाग)
महाभाष्यनवाह्निकीयालोचनम् । (नवाह्निक-प्रश्नोत्तरी) विजयमित्र शास्त्री
मालविकाग्निमित्र-रहस्यम् । डॉ. बालगोविन्द झा
मीमांसापरिभाषा सोपानम् । डॉ. शिवप्रसाद द्विवेदी
मुक्तावली-प्रकाश । (न्यायसिद्धान्तमुक्तावली-प्रश्नो.) राजेन्द्रप्रसाद कोठ्यारी
मुद्राराक्षस-विवेकः । लोकमणि दाहाल
मृच्छकटिक-सोपानम् । डॉ. नरेश झा
मेघदूत-तत्वालोकः । अशोकचन्द्र गौड़ शास्त्री
रघुवंश-रहस्यम् । रामप्रसाद त्रिपाठी । १-३ सर्ग, ६-७ सर्ग, १३-१४ सर्ग
रत्नावलीनाटिका सोपानम् । डॉ. शिवप्रसाद द्विवेदी
रसगङ्गाधर-सारः । डॉ. नरेश झा
लघुशब्देन्दुशेखर-सोपानम् । डॉ. शिवप्रसाद द्विवेदी
लघुसिद्धान्तकौमुदी-चन्द्रिका । आचार्य विजयमित्र शास्त्री
वक्रोक्तिजीवित-दीपिका । डॉ. नरेश झा
वाक्यपदीय-प्रकाशिका । (ब्रह्मकाण्ड) । डॉ. सुरेशचन्द्र शर्मा
वासवदत्ता-रहस्यम् । डॉ. शिवप्रसाद द्विवेदी
वेणीसंहार-रहस्यम् । पं. परमेश्वरदीन पाण्डेय
वेदान्तपरिभाषा-सौरभम् । आचार्य शिवप्रसाद द्विवेदी
वेदान्तसार-प्रदीपः । श्री राजेन्द्रप्रसाद कोठ्यारी
वैदिकसाहित्येतिहास-सोपानम् । डॉ. शिवप्रसाद द्विवेदी
वैयाकरणभूषणसार-दीपिका । श्री रामकिशोर त्रिपाठी
वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी-चन्द्रिका । शास्त्री एवं त्रिपाठी । (१-४ खण्ड) सम्पूर्ण
वैयाकरणसिद्धान्तलघुमञ्जूषा-रहस्यम् । स्वामी रामेश्वर पुरी
वृत्तरत्नाकर-दीपिका । पं. वेदव्यास शुक्ल
व्यक्तिविवेकप्रश्नोत्तरीः । (१-२ विमर्श) कोठ्यारी एवं द्विवेदी
व्याकरणशास्त्रस्येतिहासः । डॉ. ब्रह्मानन्द त्रिपाठी
शाकुन्तल-रहस्यम् । त्रिलोकीनाथ द्विवेदी
शिवराजविजय-दीपिका । पं. वेदव्यास शुक्ल । प्रथम विराम
शिशुपालवध-रहस्यम् । श्री अशोकचन्द्र गौड़ शास्त्री । १-४ सर्ग
संस्कृतसाहित्येतिहास-कुञ्जिका । आचार्य परमानन्द शास्त्री
सांख्यकारिकादर्शः । राजेन्द्रप्रसाद कोठ्यारी
साहित्यदर्पणालोकः । रामजीलाल शर्मा । (१-६ परि.; ७-१० परि.) सम्पूर्ण
साहित्यशास्त्रीयोनिबन्धेतिहासः । वेदव्यास शुक्ल ।
सिन्धुवादवृत्त-रहस्यम् । डॉ कृष्णदेव प्रसाद
स्वरवैदिकी-प्रकाशः । डॉ. बालगोविन्द झा

संस्कृत-विषयक सभी प्रतियोगी परीक्षाओं हेतु उपयोगी पुस्तकें

संस्कृतशिक्षणम्

व्याकरण-साहित्य-ज्योतिष-दर्शनशास्त्र-शिक्षणसहितम्

डॉ. उदय शंकर झा

विषयवस्तु—• संस्कृत भाषायाः महत्त्वम् • संस्कृतशिक्षणस्योद्देश्यानि • पाठ्यक्रमे-संस्कृतस्य स्थानम् • भाषाशिक्षणस्य कौशल-सामान्यसिद्धान्ताः शिक्षण-सूत्राणि च • संस्कृतशिक्षणविधिः-पाठ्ययोजना • संस्कृतशिक्षणे दृश्यश्रव्योपकरणानि • विभिन्न-संस्थानानां प्रयोगात्मक-प्रयासः • प्राचीनार्वाचीन-मूल्यांकन-प्रविधयः • व्याकरणशिक्षण-स्य महत्त्वम् • व्याकरणशिक्षणे प्रणाल्यः युक्तयश्च • व्याकरण-शिक्षणविधयः पाठ्य-योजना • साहित्य-शास्त्रस्यपरिचयः • साहित्यशिक्षण-विधयः-पाठ्ययोजना • ज्योतिष-शास्त्र-ज्योतिषशिक्षणस्य विधयः • कुण्डली-निर्माणम् • चित्राणां प्रतिकृती-नामन्येषां य श्रव्यदृश्योपकरणानामुपयोगः • दर्शन-शास्त्रशिक्षणम् • दर्शनशिक्षण-विधयः • निरीक्षणा-धीनः स्वाध्यायः • प्रशिक्षणस्य स्थानान्तरणाम् • दर्शन-ज्ञानस्य अन्यविद्यासु उपयोगः

संस्कृत शास्त्र-मञ्जूषा

डॉ. उदय शंकर झा

विषयवस्तु—• वैदिकसाहित्यअध्ययनम् • व्याकरणशास्त्रअध्ययनम् • छन्द(साहित्य-शास्त्र)अध्ययनम् • ज्योतिषशास्त्रअध्ययनम् • शिक्षाशास्त्रअध्ययनम् • शिक्षा-निरुक्त-कल्प-अध्ययनम् • भाषाविज्ञानअध्ययनम् • पुराणेतिहास-अध्ययनम् • धर्मशास्त्र-कर्मकाण्डअध्ययनम् • विषयानुसारेण वस्तुनिष्ठप्रश्नोत्तराणि

चिरन्तनी

पूर्वशिक्षाशास्त्री मार्गोपदेशिका

डॉ. रमाकान्तमिश्रः

• राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली • राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ, तिरुपति • श्री लाल-बहादुरशास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली • जगद्गुरु रामानन्दाचार्य राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय, जयपुर एवं अन्य सभी विश्वविद्यालयों द्वारा आयोजित पूर्वशिक्षाशास्त्रीपरीक्षा के पाठ्यक्रमानुसार

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन • वाराणसी

चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस • नई दिल्ली